शैक्षणिक

संदर्भ

वर्ष:7 अंक:38 (मूल क्रमांक 95)
नवम्बर-दिसम्बर 2014 मूल्य: ₹ 30.00

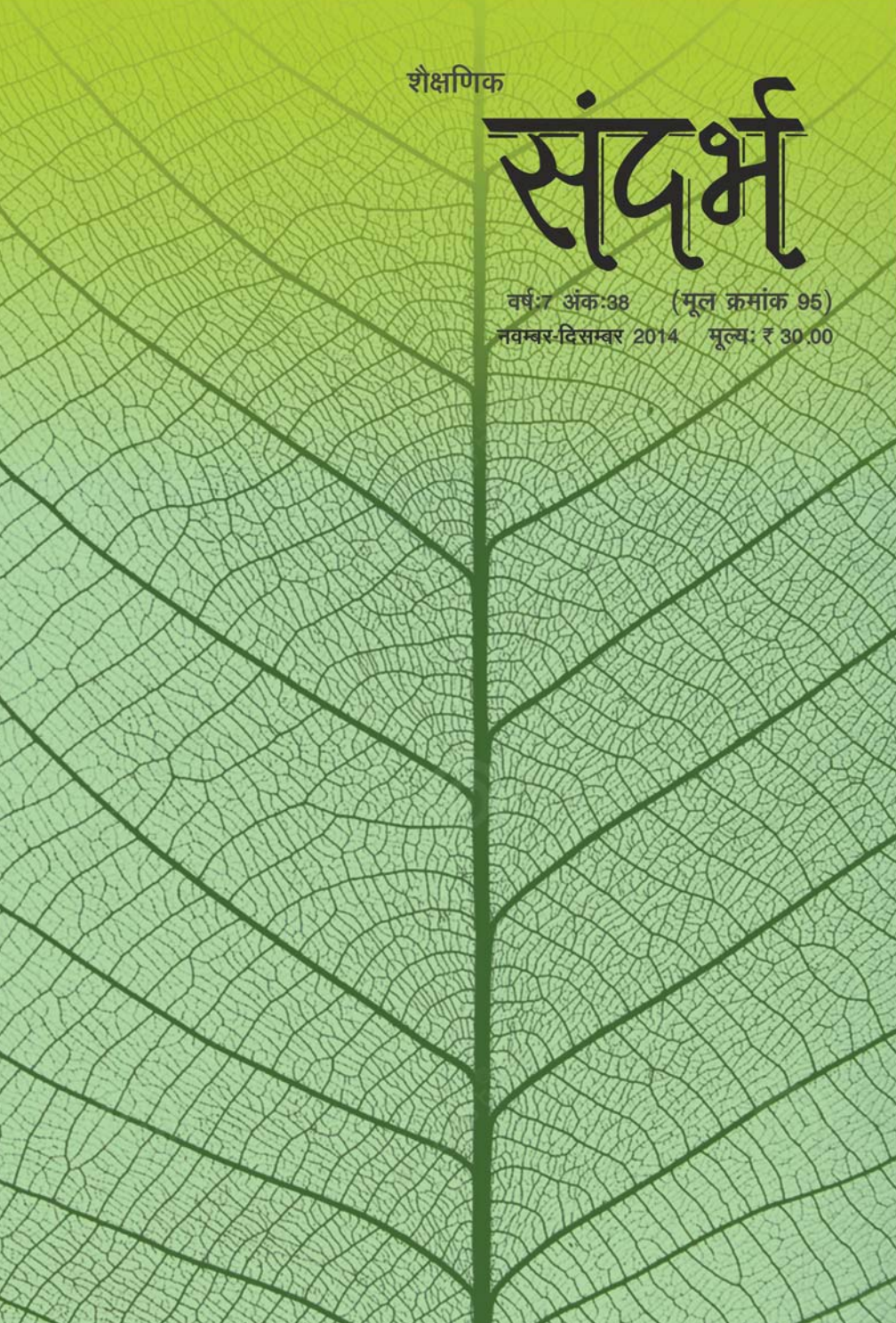

सम्पादन
राजेश खिंदरी
माधव केलकर
रश्मि पालीवाल
सहायक सम्पादक
पारुल सोनी
अम्बरीष सोनी
विनता विश्वनाथन
सम्पादकीय सहयोग
सुशील जोशी
रुस्तम सिंह
उमा सुधीर
आवरण
राकेश खत्री
प्रोडक्शन एवं डिज़ाइन
कनक शशि
कमलेश यादव
इन्दु नायर
वितरण
झनक राम साहू

शैक्षणिक
संदर्भ
शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
वर्ष:7 अंक:38 नवम्बर-दिसम्बर 2014
(मूल क्रमांक 95)
एक प्रति का मूल्य: ₹ 30.00

सम्पादन एवं वितरण
एकलव्य, ई-10, बी.डी.ए. कॉलोनी,
शंकर नगर, शिवाजी नगर,
भोपाल, म. प्र. 462 016
फोन : 0755 - 255 1109, 267 1017
www.sandarbh.eklavya.in
सम्पादन- sandarbh@eklavya.in
वितरण- circulation@eklavya.in

सदस्यता	एक साल (6 अंक)	तीन साल (18 अंक)	आजीवन
व्यक्तिगत	150 रुपए	400 रुपए	2500 रुपए
संस्थागत	300 रुपए	750 रुपए	5000 रुपए

मुख पृष्ठ: सामान्य पत्ती: न जाने कितनी ही प्रकार की पत्ती हम रोज़ ही देखते हैं राह चलते - पेड़-पौधों की पत्तियाँ, सजावटी पौधों की पत्तियाँ; गोल, लम्बी, नुकीली, कटीली और न जाने कितनी अलग-अलग आकार की पत्तियाँ। कई बार तो यह तय करना भी मुश्किल हो जाता है कि यह पत्ती है या तना। यही पत्तियाँ जब किसी कक्षा में चर्चा और समझ का मुद्दा बनती हैं तो कक्षा के माहौल में क्या हो जाता है, पढ़िए एक शिक्षिका अलका तिवारी का अनुभव पृष्ठ 50 पर।

पिछला आवरण: ध्वनि की तरंगों के प्रयोगात्मक परीक्षण के दौरान पानी के छींटें उड़ाता ट्यूनिंग फॉर्क: अपने आसपास के माहौल में न जाने कितनी ही ध्वनियाँ और आवाज़ें सुनाई देती हैं। वो चाहे किसी झुनझुने की आवाज़ हो या रात के सन्नाटे में झींगुर की। अक्सर स्कूली पढ़ाई में इन सबको वैज्ञानिक अवलोकन का हिस्सा नहीं बनाया जाता। कहीं यह गहरे तक पैठ बना गया है कि विज्ञान के अवलोकनों के लिए एक सुगठित प्रयोगशाला ज़रूरी है। अनीश मोकाशी ने कोशिश की यह बताने की कि विज्ञान तो हमारे आसपास बिखरा है। बस ज़रूरत है उसे पहचानने की, समझने की, उस पर विमर्श करने की। देखिए लेख पृष्ठ 23 पर।

आवरण 3: http://hu.123rf.com/photo_16586759_hold-hold-ciklus-az-%C3%A9jszakai-%C3%A9gen,-time-lapse-koncepci%C3%B3.html

इस अंक में उन सब चित्रों के स्रोत जिनके बारे में चित्र या लेख के साथ उल्लेख नहीं है, इंटरनेट की विविध वेबसाइट हैं।

कुछ सवाल, कुछ जवाब और रायशुमारी

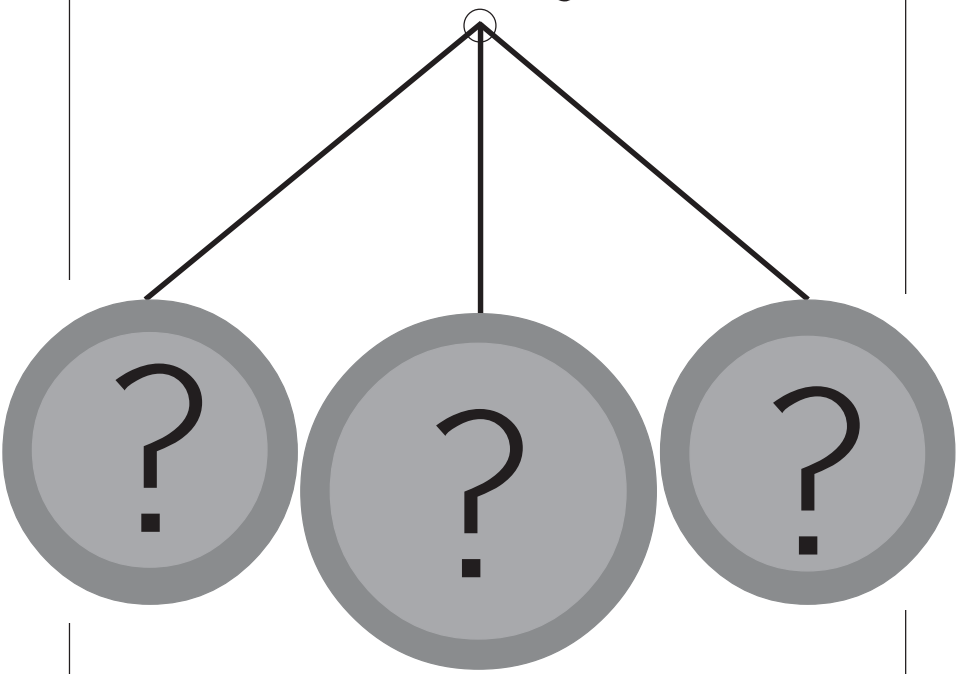

संदर्भ के बारे में कुछ सवाल आपसे।
इनके जवाब देकर
आप संदर्भ को और बेहतर बनाने में
मदद कर सकते हैं।

इस अंक के साथ एक प्रश्नावली दी जा रही है। कृपया अपने अमूल्य समय में से कुछ मिनट निकालकर हमें इनके जवाब ज़रूर भेजिए।

11

पैटर्न - बीजगणितीय तार्किकता के साधन...

बीजगणित की शुरुआत प्राथमिक कक्षाओं से ही हो जाती है। बीजगणित सिखाने के इस तरीके के अन्तर्गत बच्चे समस्या को सुलझाने के लिए खोजी प्रक्रिया अपनाते हैं, पैटर्न खोजते हैं, पैटर्न पहचानकर विभिन्न विधियों के उपयोग से उसका विवरण देते हैं और फिर उसका सामान्यीकरण करते हैं। बीजगणित सिर्फ पुस्तकीय विषय भर नहीं है बल्कि यह एक कला है जिसका उपयोग और औचित्य वास्तविक जीवन में भी है। यहाँ बीजगणित सोच और सिखाने को एक बहुत ही फर्क दृष्टिकोण से देखते हुए वैकल्पिक विधियों को प्रस्तुत किया गया है।

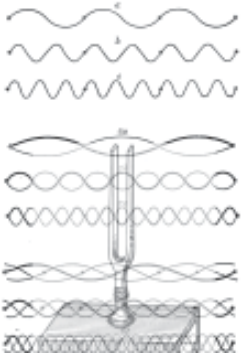

बच्चों के साथ विज्ञान

23

विज्ञान विषय को लेकर ऐसी मान्यता कि विज्ञान करने के लिए एक सुसज्जित प्रयोगशाला आवश्यक होगी, विज्ञान के सीखने-सिखाने की संस्कृति को प्रभावित करती है। इसके चलते बच्चे विज्ञान को सिर्फ पढ़ने लगते हैं, रटने लगते हैं। अगर किसी भी तरह हम बच्चों के सामने विज्ञान की इस छवि को तोड़ पाए तो हम पाते हैं कि बच्चे इसमें रुचि लेने लगते हैं, अपने आसपास मिलने वाली चीज़ों से ही विज्ञान को आज़माने और ढेरों प्रयोग करने लगते हैं। वे रोज़ के जीवन में विज्ञान को खोज लेते हैं और यही विज्ञान करने-सीखने की वास्तविक संस्कृति है।

शैक्षणिक संदर्भ

अंक-38 (मूल अंक-95), नवम्बर-दिसम्बर 2014

इस अंक में

4 | **आपने लिखा**

7 | **बोर परमाणु मॉडल - भाग 5**
सुशील जोशी

11 | **पैटर्न - बीजगणितीय तार्किकता...**
क्रिस्टन हर्बर्ट एवं रेबेक्का एच. ब्राउन

23 | **बच्चों के साथ विज्ञान**
अनीश मोकाशी

38 | **सात पूँछ का चूहा**
रवि कान्त

46 | **नक्शों पर नज़रिया**
कमलेश उप्रेती

50 | **पत्तियों पर कार्यशाला**
अलका तिवारी

59 | **विज्ञान का अराजकतावादी... - भाग 3**
रॉबिन डनबार

68 | **गरीबी पढ़ाना: दृष्टि की गरीबी - भाग 1**
सुकन्या बोस

84 | **डोमखाना के बगल में**
विवेक मेहता

90 | **चन्द्रमा छोटा और बड़ा क्यों होता है?**
सवालीराम

आपने लिखा

संदर्भ अंक 93 में प्रकाशित रेखा चमोली जी का लेख 'नन्ही तितली को उड़ना कौन सिखाता है?' शिक्षा विज्ञान की दृष्टि से चाइल्ड सेंटर्ड गतिविधि का सुन्दर उदाहरण है। पर्यावरण अध्ययन का इससे बेहतर उदाहरण हो ही नहीं सकता जहाँ एक तितली का जीवन चक्र किताबों के पन्नों से निकलकर घर और हाथ पर आ गया हो। इस प्रयास के लिए रेखाजी और बच्चे, दोनों बधाई के हकदार हैं। रेखाजी और बच्चों के अवलोकन इतने सटीक हैं कि लगता है कि ये सवाल-जवाब कहीं किसी कीट वैज्ञानिक के तो नहीं!!

दोनों तितलियों को लेकर उनके अवलोकनों एवं लेख में छपे फोटो के आधार पर मैं रेखाजी के कुछ सवालों के जवाब देने की कोशिश करता हूँ।

1. ये दोनों अलग प्रजाति की तितलियाँ नहीं हैं।
2. दरअसल बाद वाली बड़ी पीले रंग की ही तितली है।
3. और पहले डिब्बे में बैठा कीट पतंगा है।
4. यह अवलोकन भी काफी सटीक है कि बाद वाली तितली प्यूपा से दिन में बाहर निकली।
5. सामान्यतः पतंगे शाम को प्यूपा से बाहर निकलते हैं।

कुल मिलाकर यह लेख शिक्षा और विज्ञान के सिद्धान्तों के साथ इतना घुल-मिल गया है कि समझ में नहीं आ रहा कि यह शिक्षक एवं बच्चों का एक सामान्य लेख है या लार्वा एवं उसके व्यवहार पर एक शोध पत्र।

किशोर पंवार,
होल्कर साइंस कॉलेज,
बीज तकनीकी विभाग, विभागाध्यक्ष,
इन्दौर, म.प्र.

संदर्भ अंक 92 में प्रकाशित लेख 'क्या चुम्बक की शक्ति खर्च भी होती जाती है?' पढ़ा। यह लेख निश्चित ही एक महत्वपूर्ण प्रश्न रखता है और इसकी विवेचना भी सुलझी हुई है। इसका निष्कर्ष '*परन्तु दरअसल लोहे, कोबाल्ट, निकिल या मिश्र धातुओं से बने स्थाई चुम्बक से किन्हीं लौह पदार्थों को चुम्बकित करने से चुम्बक की शक्ति में ह्रास नहीं होता*' विचारणीय है कि जिस चुम्बक ने किसी लौह पदार्थ को चुम्बकित किया, तब क्या उसने कोई कार्य किया? यदि किया तब वह ऊर्जा कहाँ से आई? स्पष्टतया चुम्बकित करने वाले चुम्बक से आई - तो उसकी शक्ति में ह्रास तो होगा ही।

विलम्ब से टिप्पणी के लिए क्षमा ही माँग सकता हूँ।

विश्वमोहन तिवारी
एयर वाइस मार्शल,
नोएडा, उत्तर प्रदेश

शैक्षणिक संदर्भ अंक 94 मिला। इस अंक में कई लेख संग्रहणीय और पठनीय

लगे। कीर्ति जयराम लिखित आलेख 'क्या समझ से पढ़ना बच्चों को सिखाया जा सकता है?' अर्थ के साथ समझकर पढ़ने के लिए एक बेहतर कौशल के रूप में शिक्षक और बच्चों के लिए महत्वपूर्ण है। बच्चों के लिए इस दृष्टि से कि समझकर अर्थपूर्ण मतलब जान पाना और शिक्षकों के लिए इस उद्देश्य से कि पढ़कर मायने समझते हुए अन्यों को वैसा ही समझा पाना। अखबार पढ़ना, साहित्य पढ़ना, मेल पढ़ना, फेसबुक पर चेट करना, न्यूज़ चैनल का समाचार पढ़ना और चित्र पठन में कई बारीक अन्तर हैं जिनकी हर जगह अपनी उपयोगिता है। इस बार, पढ़ने से पहले की रणनीतियाँः पाठ संरचना पर नज़र डालना, अपने पूर्व ज्ञान को सक्रिय करना, अन्दाज़ा लगाना, सवाल पूछना; पढ़ते समय की रणनीतियाँः शब्दों की बुनावट और अर्थ, अन्दाज़ा लगाना और उसकी पुष्टि, कल्पना करना, आगे बढ़ना-पढ़ते रहना-पीछे लौटना, लिखित सामग्री से पूर्वज्ञान का जुड़ाव, लेख में छुपे निष्कर्ष; और पढ़ने के बादः अपने शब्दों में सुनाना, सार-संकलन करना, ग्राफिक ऑर्गेनाइज़र, निष्कर्ष निकालना, दोबारा पढ़ना आदि सभी बातें जिनका इस आलेख में उल्लेख किया गया है उनसे ऐसा लगता है कि आज की स्थिति में कई ऐसे बच्चे हैं कि जब कौशल की बात करें तो उनका लर्निंग स्तर कुछ और ही दिखता है। इस दिशा में कीर्ति जयरामजी का यह आलेख सभी शिक्षक साथियों के लिए काफी लाभकारी साबित होगा। कुछ महीने पहले ही शिक्षकों का सेवाकालीन प्रशिक्षण सम्पन्न हुआ है और अब एक दिन की अकादमिक चर्चा के लिए इस तरह के आलेख की काफी अहमियत है। 'संदर्भ' के सम्पादन समूह को बधाई।

नरेन्द्र साहू,
अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन,
धमतरी, छत्तीसगढ़

भूल सुधार

अंक 94 में लेख 'जेम्स बॉण्ड की दौड़ और स्नेल्स लॉ' *के पृष्ठ 15 पर प्रकाशित चित्र-2 में बिन्दु A और बिन्दु B के बीच में बिन्दु B′ है जो भूलवश छप नहीं पाया। इसी लेख के पृष्ठ 23 पर प्रकाशित चित्र-5 को चित्र-6 के रूप में देखिए और चित्र-6 को चित्र-5 के रूप में देखिए।*

– सम्पादक मण्डल

सुतली और हुनर का मेल!

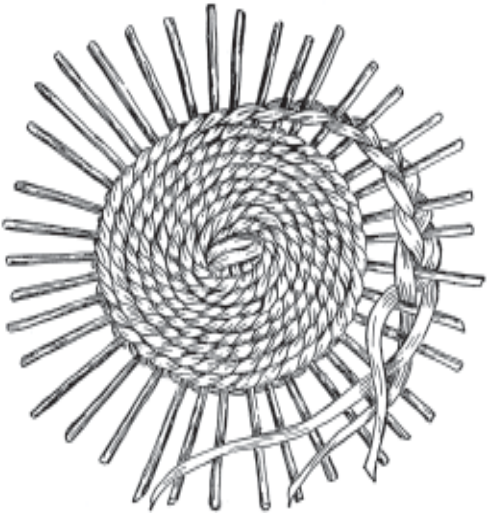

जैसे - *संदर्भ*

एक प्रति का मूल्य 30 रुपए
एक साल की सदस्यता 150 रुपए
तीन साल की सदस्यता 400 रुपए

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें

एकलव्य
ई-10, बी.डी.ए. कॉलोनी, शंकर नगर,
शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. पिन 462016
फोनः 0755 - 2671017, 2550976
www.eklavya.in/sandarbh
ई-मेलः sandarbh@eklavya.in

बोर परमाणु मॉडल

सुशील जोशी

विज्ञान को समझने में यह बात समझना ज़रूरी है कि विज्ञान आज़माइश और सुधार की प्रक्रिया है। यह उस समय ज्ञात सर्वोत्तम ज्ञान का द्योतक है, न कि अन्तिम सत्य का। यह बात परमाणु संरचना के इतिहास में बार-बार उभरती है।

जब बोर ने परमाणु संरचना पर विचार करना शुरू किया उस समय कई बातें स्पष्ट थीं। पहली तो यह कि परमाणु अविभाज्य नहीं है और स्वयं कुछ उप-परमाणविक कणों से मिलकर बना है। इनमें से एक कण ऋणावेशित है जिसे इलेक्ट्रॉन का नाम दिया गया है।

रदरफोर्ड का सौर मण्डल मॉडल

इसके आधार पर थॉमसन ने परमाणु का तरबूज़ मॉडल प्रस्तुत किया था।

मगर रदरफोर्ड के प्रयोगों से पता चला था कि परमाणु का धनावेश एक छोटे-से केन्द्रक में घनीभूत है और परमाणु का अधिकांश हिस्सा खोखला है यानी परमाणु में ढेर सारी खाली जगह है।

हम देख ही चुके हैं कि इसके आधार पर रदरफोर्ड ने परमाणु का सौर मण्डल मॉडल प्रतिपादित किया था।

मगर रदरफोर्ड के मॉडल के साथ कुछ दिक्कतें थीं:

1. यदि परमाणु में इलेक्ट्रॉन धनावेशित केन्द्रक के चक्कर काटेंगे तो उनमें त्वरण पैदा होगा और त्वरण के चलते वे विद्युत चुम्बकीय विकिरण का उत्सर्जन करेंगे। इस उत्सर्जन के कारण उनकी ऊर्जा का ह्रास होगा और वे लगातार केन्द्रक के समीप खिंचते जाएँगे और अन्ततः उसी में समा जाएँगे। लेकिन वास्तव में ऐसा होता नहीं है।

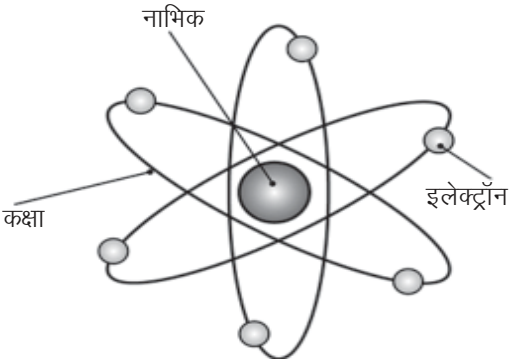

रदरफोर्ड का सौर मण्डल मॉडल

2. यदि इलेक्ट्रॉन सतत ढंग से ऊर्जा उत्सर्जित करेंगे तो जो विद्युत-चुम्बकीय विकिरण उत्पन्न होगा वह भी सतत प्रकृति का होगा (यानी उसमें सारी तरंग लम्बाइयाँ मिलनी चाहिए)। वास्तविक प्रयोगों में देखा गया था कि तत्वों के वर्णक्रम सतत नहीं होते बल्कि स्पष्ट रेखाओं से बने होते हैं। इसका मतलब यह है कि ऊर्जा का उत्सर्जन अलग-अलग तरंग लम्बाइयों पर होता है, सारी तरंग लम्बाइयों पर नहीं।

बोर ने इन दिक्कतों के समाधान के लिए जो तरीका सुझाया वह एकदम नवीन था। इस तरीके में नए विकसित होते क्वांटम भौतिकी के सिद्धान्तों का उपयोग किया गया था। उन्होंने इन सिद्धान्तों के आधार पर कुछ नियम विकसित किए थे। कहते हैं कि इसके साथ विज्ञान के एक नए युग की शुरुआत हुई थी। अवलोकनों के साथ फिट होने वाले नियम बनाने का तरीका शुरू हुआ, चाहे वे नियम मौजूदा सिद्धान्तों के खिलाफ ही क्यों न नज़र आएँ।

असम्भव से लगते कारगर नियम

इस सन्दर्भ में बोर ने कहा था, "ये कुछ नियम हैं जो असम्भव-से लगते हैं मगर ये परमाणुओं के व्यवहार को भलीभाँति समझाते हैं। तो इन नियमों को सही मानकर इनका उपयोग करते हैं।" बोर ने दो नियम विकसित किए थे जो प्रायोगिक परिणामों से मेल खाते थे।

1. इलेक्ट्रॉन बगैर विकिरण उत्सर्जित किए मात्र कुछ कक्षाओं में परिक्रमा कर सकते हैं। इन्हें बोर ने स्थिर कक्षाएँ कहा। ये कक्षाएँ केन्द्रक से कुछ निश्चित दूरियों पर होती हैं। ये कक्षाएँ निश्चित ऊर्जा मान की द्योतक होती हैं और इन्हें ऊर्जा स्तर भी कहा जाता है। इन कक्षाओं में परिक्रमा करते इलेक्ट्रॉन में त्वरण तो होता है मगर इस त्वरण के कारण विकिरण का उत्सर्जन नहीं होता।

2. इलेक्ट्रॉन एक स्थिर कक्षा से किसी दूसरी स्थिर कक्षा में ही जा सकते हैं। यानी यदि इलेक्ट्रॉन ऊर्जा सोखेगा या छोड़ेगा तो किन्हीं दो स्थिर कक्षाओं के बीच अन्तर के बराबर ऊर्जा ही सोखेगा या उत्सर्जित करेगा। यानी उत्सर्जित या अवशोषित विकिरण की आवृत्ति इस बात से तय होगी कि उन दो कक्षाओं के बीच ऊर्जा का अन्तर कितना है।

$$\Delta E = E_2 - E_1 = h\nu$$

इन दो नियमों की मदद से परमाणु व्यवहार की सारी गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं। अलबत्ता, गौरतलब बात यह है कि बोर को यह पता नहीं था कि क्या वास्तव में परमाणुओं में इलेक्ट्रॉन इन नियमों का पालन करते हैं और इन नियमों का भौतिक धरातल क्या है। मतलब यह पता नहीं है कि परमाणु के भौतिक चित्र में इन नियमों का आशय क्या है। खैर, इन नियमों से उस समय उपलब्ध सारे अवलोकनों की व्याख्या हो जाती है।

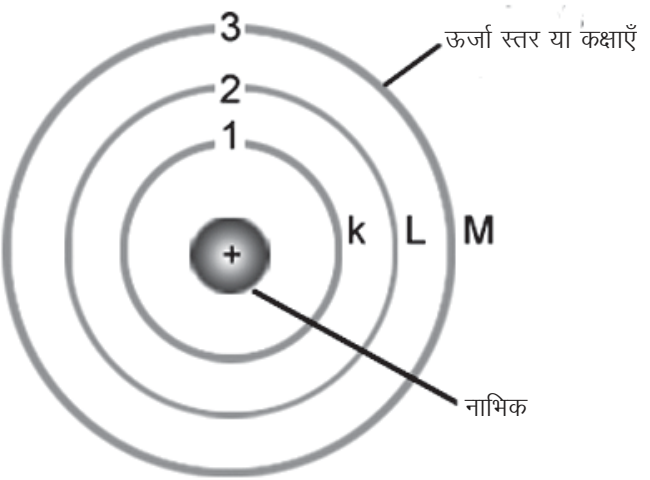

बोर का परमाणु मॉडल

सबसे पहला काम तो इस मॉडल ने यह किया कि रदरफोर्ड के परमाणु मॉडल को स्थिरता प्रदान की। चूँकि नियम-1 के मुताबिक स्थिर कक्षाओं में परिक्रमा करते इलेक्ट्रॉन विकिरण नहीं छोड़ते, इसलिए अब उनके केन्द्रक में समाहित हो जाने का खतरा नहीं रहा।

दूसरा महत्वपूर्ण काम यह हुआ कि तत्वों के परमाणु वर्णक्रम की सफल व्याख्या हो पाई। जैसा कि हम देख चुके हैं, तत्वों के परमाणु वर्णक्रम में कुछ ही तरंग लम्बाइयों का विकिरण पाया जाता है। चूँकि इलेक्ट्रॉन एक स्थिर कक्षा से किसी अन्य स्थिर कक्षा में ही जा सकते हैं, इसलिए उनके द्वारा सोखी गई या उत्सर्जित ऊर्जा (तरंग लम्बाई) का मान भी एक निश्चित ऊर्जा पैकेट के रूप में ही होगा।

बोर ने काफी विस्तृत गणनाएँ करके यह स्पष्ट किया कि उनके द्वारा प्रस्तुत नियमों के आधार पर हाइड्रोजन वर्णक्रम के राइडबर्ग सूत्र को प्रतिपादित किया जा सकता है। यहाँ उस गणित में जाने की ज़रूरत नहीं है मगर उस समय भी सभी लोग इस बात के कायल हो गए थे कि निराधार होने के बावजूद बोर के नियम कारगर हैं।

सुशील जोशी: एकलव्य द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

सृजन में भाषा बाधा नहीं बनती

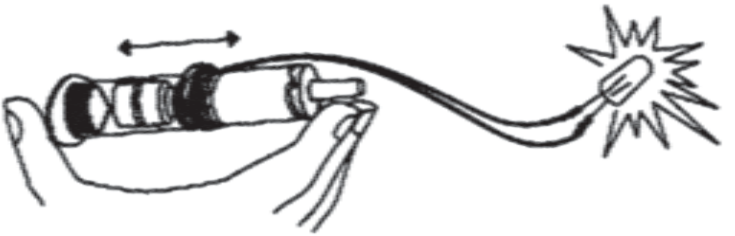

एक सिरिंज पर वार्निश चढ़े ताँबे के तार के 500 घेरे लपेट कर तार के दोनों सिरों पर एल.ई.डी. लगाइए। सिरिंज का पिस्टन निकाल कर भीतर थोड़ी-सी रुई रखिए फिर नियोडायनियम का ताकतवर चुम्बक सिरिंज के भीतर रखकर, अँगूठे से सिरिंज का मुँह बन्द करके, सिरिंज को आगे-पीछे हिलाइए और देखिए क्या एल.ई.डी. जल रहा है?

संदर्भ मराठी एवं गुजराती भाषा में भी उपलब्ध है

सम्पर्क कीजिए

संदर्भ (मराठी)

शैक्षणिक संदर्भ - संदर्भ सोसायटी
c/o समुचित इन्वायरो टेक प्राइवेट लिमिटेड,
फ्लेट न. 06, एकता पार्क को-ऑप हाउसिंग
सोसायटी, निर्मिति शोरूम के पीछे,
अभिनव हाई स्कूल के पास, लॉ कॉलेज रोड,
पुणे 411004, फोन: 020 - 25460138
ई-मेल: sandarbh.marathi@gmail.com

संदर्भ (गुजराती)

नचिकेता ट्रस्ट
आर्च दवाखाना के पास, नगारिया,
धरमपुर, ज़िला वलसाड,
गुजरात 396050
फोन: 02633 - 240409

पैटर्न - बीजगणितीय तार्किकता के साधन एवं औज़ार

क्रिस्टन हर्बर्ट एवं रेबेक्का एच. ब्राउन

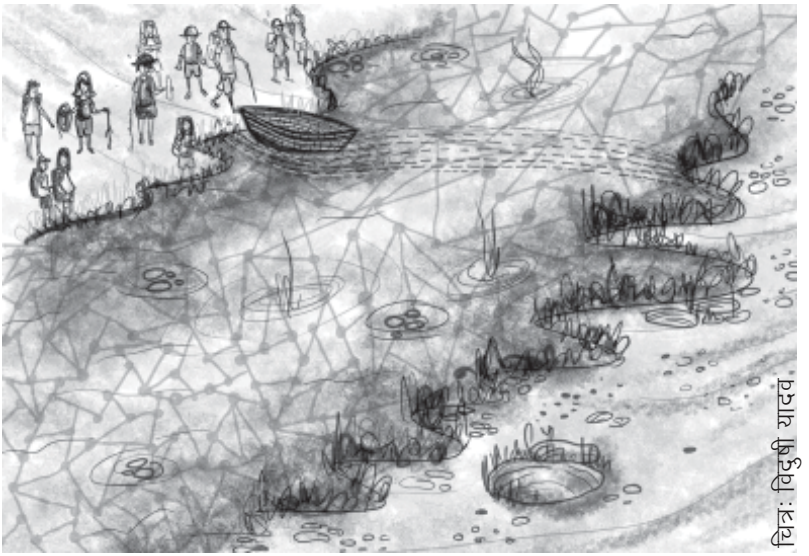

चित्रः विदुषी यादव

मैथस्केपः सीइंग एण्ड थिंकिंग मैथेमैटिकली अमेरिका में मिडिल स्कूल गणित के लिए तैयार किया गया एक पाठ्यक्रम था। इसकी देशभर की कक्षाओं में फील्ड-टैस्टिंग हुई। इस पाठ्यक्रम के एक पाठ 'क्रॉसिंग द रिवर' में दी गई समस्या का समूहों में बँटे बच्चे हल ढूँढ़ते हुए पैटर्न खोजने की कोशिश करते हैं। यही तो है बीजगणित सोच की शुरुआत।

एक शिक्षक ने अपनी कक्षा छठवीं के बच्चों को 'Patterns in Numbers and Shapes' (संख्याओं और आकारों में पैटर्न) इकाई के एक पाठ 'क्रॉसिंग द रिवर' का बच्चों के साथ परिचय कराने के लिए एक कहानी बनाई।

"तुम और तुम्हारा एक साथी, 8 वयस्कों के साथ एक लम्बी सैर पर पैदल निकले हैं। सब बहुत थक चुके हैं। तुम सब एक चौड़ी नदी के किनारे पहुँचते हो, और घर जाने के लिए तुम सबको उस नदी को पार करना ही होगा। परन्तु तुम्हारे समूह में कोई भी तैरना नहीं जानता। नदी के किनारे एक छोटी नाव है, जिसमें एक बार में केवल 2 बच्चे या 1 वयस्क, या फिर 1 बच्चा ही जा सकता है। तुम्हारे दल के सभी लोगों को नदी पार कराने के लिए नाव के कितने चक्कर लगाने पड़ेंगे?"

कक्षा में इस कहानी पर एक संक्षिप्त चर्चा के बाद विद्यार्थियों के समूहों ने इस समस्या को सुलझाने के लिए कई तरीके अपनाए। कुछ समूहों ने कागज़ पर रेखाचित्र बनाकर शुरुआत की। कई ने इस पर अभिनय किया। कुछ ने विभिन्न रंगों के घनाकार गुटकों के साथ यह करके देखा कि नदी को पार करने के लिए कितनी बार जाना होगा। उनकी रणनीति जो भी हो परन्तु हर समूह के बच्चे एक खोजी प्रक्रिया का सहारा ले रहे थे, जो उन्होंने पैटर्न ढूँढ़ने एवं उनके सामान्यीकरण करने के दौरान सीखी थी। और साथ ही वे बीजगणितीय सोच की नींव का निर्माण कर रहे थे।

संख्याओं और आकारों में पैटर्न पर इकाई को राष्ट्रीय विज्ञान संस्थान के अनुदान से निर्मित पाठ्यक्रम *मैथस्केपः सीइंग एण्ड थिंकिंग मैथेमैटिकली* के अन्तर्गत विकसित किया गया था, और पूरे देश की कक्षाओं में इसकी फील्ड-टैस्टिंग हुई थी। इसके प्रत्येक पाठ में विद्यार्थियों को एक ऐसी समस्या का सामना करना पड़ता है जो सन्दर्भ के साथ दी जाती है। इस समस्या पर काम करने के लिए वे जोड़ियों या छोटे समूहों में काम करते हैं। इस पर बच्चे अभिनय करके, गतिविधि करके या चित्र बनाकर, अथवा वास्तविक चीज़ों के साथ कुशलतापूर्वक जोड़-तोड़ करके पेश की गई स्थिति का खाका बनाकर काम करते हैं। बच्चे समस्या को सुलझाने के लिए खोजी प्रक्रिया को अपनाते हैं:

- वे कहानी में एक पैटर्न को खोजते हैं,
- वे पैटर्न को पहचानकर विभिन्न विधियों के उपयोग से उसका विवरण देते हैं, और
- वे पैटर्न का सामान्यीकरण करते हैं और कहानी से उसका सम्बन्ध जोड़ते हैं।

'संख्याओं और आकारों में पैटर्न' की इकाई एवं पाठयक्रम की अन्य

बीजगणित केन्द्रित इकाइयाँ यहाँ पर एक नई धारणा देने का प्रयास करती हैं कि बच्चे कैसे बीजगणितीय सोच की दक्षताओं को विकसित कर सकते हैं। विद्यार्थियों को वास्तविक जीवन में बीजगणित के उपयोग और उसके औचित्य को दिखाने के लिए बीज-गणितीय सोच का यह व्यापक दृष्टिकोण लिया गया है। गणितीय चिन्हों एवं साधनों के उपयोग के साथ विभिन्न परिस्थितियों का विश्लेषण कर पाना बीजगणितीय सोच है जिसमें,

- दी गई परिस्थिति से सूचना निकाल पाना, जैसे कि यहाँ प्रस्तुत परिस्थिति है - 'नदी पार करना',
- प्राप्त हुई सूचना को शब्दों, रेखाचित्रों, तालिका, ग्राफ और समीकरण में प्रदर्शित करना, और
- उसी स्थिति एवं नई सम्बन्धित स्थिति में प्राप्त गणितीय जानकारी को समझना एवं व्याख्या करना, जैसे कि अज्ञात के लिए हल करना, अनुमान को परखना और कार्यात्मक सम्बन्धों की पहचान करना।

'संख्याओं और आकारों में पैटर्न' की इकाई में, उपयोग में आने वाली यह खोजी प्रक्रिया, तीन भागों वाले ढाँचे का एक प्रारम्भिक एवं अनौपचारिक उदाहरण है (चित्र-1)।

सन्दर्भ के साथ दी गई समस्या को इस खोजी प्रक्रिया के उपयोग से हल करने पर यह बच्चे को बीजगणित के अनौपचारिक खोज के मौके प्रदान करती है, जिसकी चर्चा 'स्कूल गणित के पाठयक्रम और मूल्यांकन मानकों' में की गई है। यह कहता है - "तो

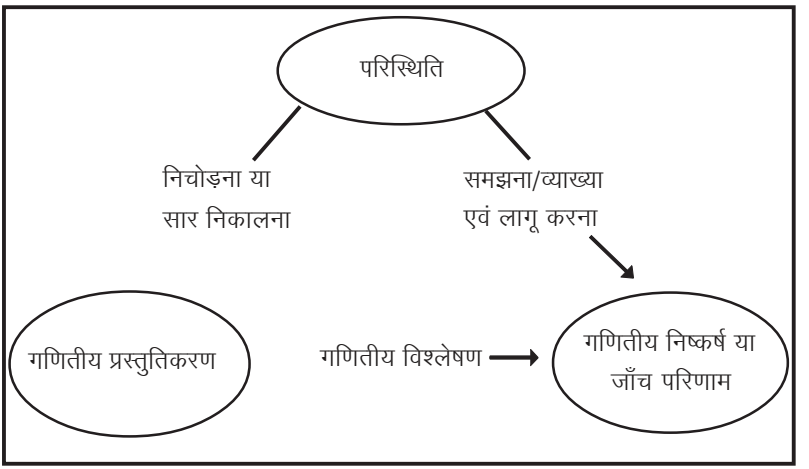

चित्र-1: सन्दर्भ आधारित बीजगणितीय सोच का एक ढाँचा

कक्षा 5 से 8 तक के विद्यार्थियों के लिए यह आवश्यक है कि वे अनौपचारिक तरीकों से बीजगणितीय अवधारणाओं की खोज करें जिससे वे आने वाली बीजगणित की औपचारिक पढ़ाई के लिए बुनियाद निर्मित कर सकें।" यह इकाई बच्चों के द्वारा सीखी गई बीजगणितीय सोच को उनके अपने शब्दों और अपने संकेतों में बताने पर ज़ोर देती है, न कि बच्चों को औपचारिक सांकेतिक बीजगणित की ओर ढकेल दिया जाए। साथ ही पाँच सप्ताह की यह इकाई विद्यार्थियों को इस बात के लिए सहायता और अवसर देती है कि वे पैटर्न तलाशने की दक्षता और ठोस परिस्थितियों में पैटर्न के सामान्यीकरण करने की क्षमता को विकसित कर सकें। इस पद्धति में यह भी निहित है कि बीजगणित के एक सक्षम विद्यार्थी होने का बच्चों का आत्मविश्वास स्वयं में बढ़े।

समस्याओं के हल के लिए खोजी प्रक्रिया

खोजी प्रक्रिया में मूलतः तीन चरण होते हैं: (1) पैटर्न खोजना, (2) पैटर्न पहचानना, और (3) सामान्यीकरण करना। ये तीन चरण चित्र-1 में दिखाए गए ढाँचे के विशिष्ट घटक हैं; पैटर्न खोजना सूचना या सार निकालना है, पैटर्न की पहचान करना गणितीय विश्लेषण है, और सामान्यीकरण करना मतलब जो सीखा है उसकी व्याख्या करना एवं लागू करना है। बच्चे इस इकाई के सभी 12 पाठों में इस खोजी प्रक्रिया का अनुसरण करते हैं। इस लेख में एक पाठ 'नदी पार करना' को उदाहरण के रूप में इस्तेमाल करके बच्चे जिस खोजी प्रक्रिया का अनुसरण करते हैं, उसको चित्रित किया गया है। बच्चे स्टुडेंट-शीट (विद्यार्थियों के लिए छपा पन्ना, चित्र-2) से मार्गदर्शन लेते हैं। शिक्षकों की एक गाइड में समस्या को हल करने में बच्चों की मदद के लिए मेनिप्युलेटिव (गणित सिखाने के लिए कुछ मूर्त चीज़ें एवं तरीके), भौतिक गतिविधि (फ़िज़िकल एक्टिविटी) और डायाग्राम या रेखाचित्र बनाने के सुझाव बताए गए हैं।

पैटर्न खोजना

'नदी पार करना' समस्या के हल की शुरुआत के लिए बच्चे इस परिस्थिति (चित्र-2, चरण-1) का एक मॉडल तैयार करते हैं और पहले कदम के रूप में पैटर्न को तलाशते हैं। जैसा कि शिक्षक गाइड में सुझाव दिया गया है, शिक्षक बच्चों को कुछ कांउटर (गिनती के लिए कुछ चीज़ें) – जिससे इस समस्या को सुलझाने में मदद मिले – देंगे; एक जैसे रंग के दो कांउटर बच्चों को प्रदर्शित करते हैं और दूसरे रंग के आठ कांउटर वयस्कों को प्रदर्शित करते हैं (चित्र-3)।

जैसे ही बच्चे नाव को नदी के एक किनारे पर लाकर वापस चलाना प्रारम्भ करते हैं, तो वे टिप्पणियाँ करना शुरू कर देते हैं। जैसे कि - "किसी को तो नाव को वापस लेकर जाना होगा,

1. एक समूह जिसमें 8 वयस्क और 2 बच्चे हैं, एक नदी को पार करना चाहता है। वहाँ एक नाव है जिसमें एक बार में केवल 1 वयस्क, या 1 बच्चा, या 2 बच्चे जा सकते हैं। सभी नाव को चला सकते हैं। सभी को नदी पार करने के लिए नाव को कितनी बार नदी पार करनी होगी?
2. क्या होगा यदि वयस्कों की संख्या अलग होगी?

   निम्न परिस्थितियों में नाव को कितनी बार नदी पार करनी होगी?

   - 6 वयस्क और 2 बच्चे
   - 15 वयस्क और 2 बच्चे
   - 3 वयस्क और 2 बच्चे
   - 100 वयस्क और 2 बच्चे
3. आप यह कैसे पता लगाएँगे कि वयस्क किसी भी संख्या में और साथ में 2 बच्चे हों तो, नाव को कितनी बार नदी पार करनी होगी? इस समस्या को सुलझाने के लिए आपके द्वारा उपयोग की गई विधि बताइए।

चित्र-2: 'नदी पार करना' के लिए विद्यार्थियों का पन्ना

क्या एक बच्चा यह कर सकता है" और "इन बच्चों के हाथ तो नाव चलाने के बाद सचमुच बहुत थक जाएँगे।"

बच्चे इस समस्या पर काम करने के दौरान आँकड़ों को संग्रह एवं दर्ज करते हैं। वे आँकड़ों को दर्ज करने के लिए कई विधियों को विकसित करते हैं। कुछ बच्चे नाव के चक्करों को दर्ज करने के लिए सूची में टेली चिन्हों (खड़े, आड़े या अन्य निशान) का प्रयोग करते हैं, और कुछ बच्चे चित्र या रेखाचित्र बनाकर नदी पार करने के लिए लगने वाले प्रत्येक चक्कर को दिखाते हैं (देखें चित्र-3)। जब बच्चे अपने आँकड़ों को संग्रहित व दर्ज कर रहे थे तो वे बार-बार आने वाले (दोहराव वाले) पैटर्न पर ध्यान देना शुरू करते हैं, कुछ बच्चों को मूर्त वस्तुओं के साथ काम करते समय पैटर्न दिखाई देता है और पैटर्न को जाँचने के लिए वे उनके द्वारा दर्ज किए गए आँकड़ों को देखते हैं।

उदाहरण के लिए, एक कक्षा में दो लड़कियों ने अपनी शिक्षिका से कहा, "हमने पैटर्न ढूँढ़ लिया।" मूर्त सामग्री का उपयोग करके, उन्होंने अपनी शिक्षिका को दिखाया और बताया, "पहले आप दो बच्चों को भेजेंगे, इसके बाद एक बच्चा वापिस आएगा, तब उसके बाद हम एक वयस्क को भेजेंगे, अब दूसरा बच्चा नाव को लेकर वापिस आएगा, इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता है कि हमारे पास कितने वयस्क

नदी पार करना:

8 वयस्क, 2 बच्चे

वयस्क:	बच्चे:
टॉम (T)	माइक् (M)
जो (J)	बेट्सी (B)
स्टीव (S)	
कर्क (K)	
कार्ला (C)	
रेचल (R)	
ऐमी (A)	
लॉरेन (L)	

उत्तर : 33 एक तरफ की पारियाँ

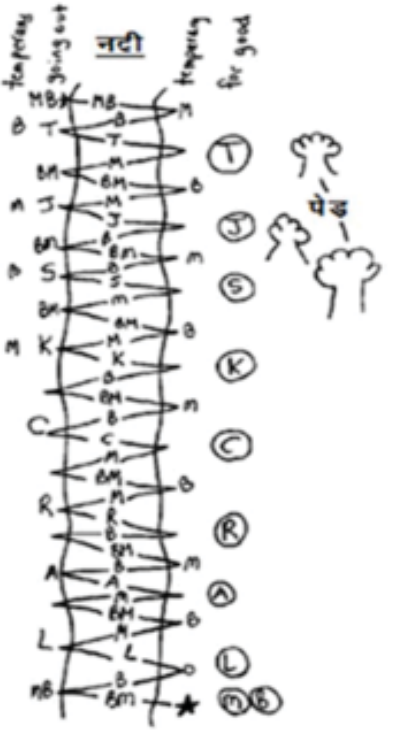

चित्र-3: एक बच्चे ने नदी पार करने वाले सवाल को इस प्रकार चित्र बनाकर हल किया।

है, हमें बस दो बच्चे चाहिए होंगे। आप किसी भी संख्या में वयस्कों को ले जा सकते हैं भले ही उन्हें पार करने में पूरा दिन लग जाए।" यह बताने के लिए कि 8 वयस्कों के लिए कितनी पारी लगानी होंगी, ये दोनों लड़कियाँ वापिस करके देखने लगीं। उन्होंने सभी पारियों को दर्ज किया, और इसके बाद सभी यात्राओं को गिना। अन्य बच्चे अपने द्वारा दर्ज

किए गए आँकड़ों में पैटर्न को तलाश रहे थे, (2 बच्चे गए, 1 बच्चा वापिस आया, 1 वयस्क गया, दूसरा बच्चा वापिस आया, 2 बच्चे गए, 1 बच्चा वापिस आया और इसी तरह) और उन्होंने पहचाना कि 1 वयस्क के साथ नदी पार करने में चार चक्कर लगाने होंगे।

पैटर्न पहचानना

बच्चों ने अलग-अलग वयस्कों की संख्या के साथ ऐसी कई अन्य समस्याओं को हल करने की कोशिश की (चित्र-2 का चरण-2)। कुछ बच्चों के लिए अतिरिक्त समस्याओं को हल करना उनकी पैटर्न की समझ को जाँचने एवं परिष्कृत करने का एक रास्ता था (देखें चित्र-4)। और अन्य बच्चों के पैटर्न पहचानने का एक अतिरिक्त अवसर था (देखें चित्र-5)।

जब मैं प्रक्रिया को चरण के अनुसार कर रहा था, मैंने किया, और मैंने पाया कि मैं दोहरा रहा हूँ। इसने मुझे पैटर्न को देखने में मदद की। हर बार चार स्टेप के बाद फिर उसी चीज़ को कर रहा था, लगातार बार-बार, तब मैंने वयस्कों की संख्या को 4 से गुणा किया और अपना उत्तर पा लिया। और इसका सूत्र है,

चित्र-4: एक बच्चे ने बताया कि कैसे उसने और उसके साथी ने पैटर्न का उपयोग करके समस्या को सुलझाया और एक सूत्र बनाया।

आपको बस इतना करना है कि वयस्कों की संख्या में 4 का गुना करना है, और फिर उस नियम का उपयोग करते हुए 1 जोड़ना है, जिसकी बात हमने स्कूल में की थी।

100a और 2c = 401

4 x 100 = 400 + 1(अन्तिम बच्चा)

= 401

चित्र-5: एक बच्चे ने पैटर्न की सामान्यीकृत समझ का उपयोग 100 वयस्कों वाली समस्या को हल करने में किया।

इस चरण की अन्तिम समस्या के रूप में बच्चों से यह ढूँढ़ने के लिए कहा गया कि 100 वयस्कों को नदी पार कराने के लिए कितने चक्कर लगाने होंगे। इस बार कुछ बच्चों ने उत्तर पाने के लिए सामग्री का इस्तेमाल नहीं किया, बल्कि इसके स्थान पर उन्होंने अपने पैटर्न की समझ में दूसरी संख्या के स्थान पर 100 को रखकर गणना की और उत्तर निकाला (देखें चित्र-5)।

हालाँकि कुछ बच्चे मूर्त संसाधनों का प्रयोग करते हुए समस्या को इस बिन्दु तक हल कर रहे थे। एक बच्चे की दुविधा उसी की टिप्पणी में दिखाई देती है, "पेपर में यह कहा गया था कि यदि 100 वयस्क होंगे तो उत्तर क्या होगा। और मैं सोच रहा था कि अब हमें 100 वयस्कों के लिए यह प्रश्न हल करना पड़ेगा। मैं आशा करता हूँ कि हमें यह प्रश्न नहीं करना होगा।"

बच्चों से बहुत बड़ी संख्या में वयस्कों को पार करवाने की समस्या को हल करने के लिए कहना उन्हें प्रेरित करता है कि वे समस्या के हल के लिए एक व्यापक विधि की ओर रुख करें जो पैटर्न पर आधारित हो, जिसे उन्होंने हर समस्या में देखा है और उसे बड़ी संख्याओं वाली समस्याओं के साथ भी लागू किया जा सकता है।

बच्चे पैटर्न के सामान्यीकृत कथन की खोज के लिए आँकड़ों को विविध तरीकों से उपयोग व प्रस्तुत करते हैं। अगर बच्चे कहीं फँस जाते हैं तो शिक्षिका उन्हें सलाह दे सकती है कि वे अपने आँकड़ों को तालिका या ग्राफ में प्रदर्शित करें। इस इकाई के शुरुआती पाठों में बच्चों को तालिका एवं ग्राफ से आँकड़े पढ़ना सिखाया जाता है, ऐसा प्रस्तुतिकरण पैटर्न तलाशने में मदद कर सकता है।

व्यापीकरण

समस्या के अन्तिम चरण में (चित्र-2 में चरण-3) बच्चे प्रत्येक सदस्य को नदी पार कराने के लिए कितनी पारी लगानी होंगी के लिए एक सामान्यीकृत विधि विकसित करते हैं, वयस्कों की दी गई किसी भी संख्या के लिए। बच्चे अपने साथी को एक स्पष्ट सामान्यीकृत नियम उस रूप में बताते हैं जिसमें वह सबसे ज़्यादा सहज हो - शब्दों के प्रयोग से, चित्रों से, उनके खुद के द्वारा बनाए चिन्हों से, या समीकरण के ज़रिए - और इसे वे मौलिक परिस्थिति के साथ जोड़ते हुए बताते हैं (चित्र 5 एवं 8)।

बच्चों के लिए इस चरण का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह बताना है कि उनका यह सामान्यीकरण कैसे भौतिक स्थितियों से सम्बद्ध है, आप क्यों वयस्कों की संख्या को 4 से गुणा कर रहे हैं? और अन्तिम चक्कर के लिए 1 क्यों जोड़ रहे हैं? जब बच्चे इन प्रश्नों का उत्तर देने लगते हैं, उन्होंने एक महत्वपूर्ण समझ को पाया है कि कैसे बीजगणितीय सोच को ठोस परिस्थिति के मॉडल के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

2 बच्चे गए
1 बच्चा वापिस आया
1 वयस्क गया
1 बच्चा वापिस आया

---

2 बच्चे गए
1 बच्चा वापिस आया
1 वयस्क गया
1 बच्चा वापिस आया

---

2 बच्चे गए
दोहराव...

चित्र-6: कुछ बच्चों ने लिखकर शुरुआत की, परन्तु इसके बाद भी वे पैटर्न पहचान पाए।

पैटर्न के सामान्यीकरण से बच्चे बीजगणितीय सोच की ताकत को समझ पाते हैं। जैसे एक बच्चे ने कहा - "वहाँ एक पैटर्न था, प्रत्येक चार चक्करों का समूह एक जैसा था। आप सूत्र के द्वारा यह पता लगा सकते हैं कि कितनी पारियाँ लगेंगी। तेज़ी से पता लगाने के लिए आप सूत्र का प्रयोग कर सकते हैं।" एक अन्य बच्चे ने लिखा, "मैंने सोचा कि हमें सूत्र ढूँढ़ना चाहिए तो समस्या को हल करना ज़्यादा आसान हो जाएगा। सूत्र, समस्या को हल करना आसान बना देता है। यह बहुत मददगार था।" तीसरे बच्चे ने लिखा, "कभी-कभी जब आप यह सोचते हैं कि आपको एक समीकरण मिल गया है, आपने सच में क्या पाया है, वह कदम जिससे आप समस्या को छोटे रास्ते से हल कर सकें।" जब बच्चों के सामने मिलती-जुलती परिस्थितियाँ प्रस्तुत की जाती हैं, तो वे बीजगणितीय सोच की इस ताकत को देखकर प्रेरित होते हैं और इस दिशा में प्रयास करते हैं।

इस पद्धति पर एक पूरी इकाई के लाभ

जैसे कि 'नदी पार करना' एक उदाहरण है, इसी इकाई में और पाठ भी इसी पद्धति (तरीके) का इस्तेमाल करते हैं। बच्चों को एक सन्दर्भ-आधारित समस्या दी जाती है, जिसे उनको एक खोजी प्रक्रिया के द्वारा हल करना होता है। उदाहरण के लिए, 'रंगी हुई छड़ें' में बच्चों से कहा जाता है कि

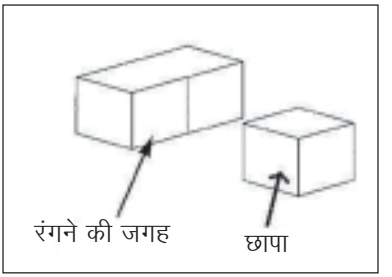

चित्र-7: 'रंगी हुई छड़ें' समस्या का रेखाचित्र

एक कम्पनी विभिन्न लम्बाइयों की रंगी हुई छड़ एक रंग छापने वाली मशीन से बनाती है (देखें चित्र-7)। एक समय में मशीन से एक छड़ पर रंग का एक वर्गाकार छापा लगता है। बच्चों से पूछा जाता है कि, "विभिन्न लम्बाई की छड़ों की सभी सतहों को रंगने के लिए कितनी बार छापे लगाने पड़ेंगे?" खोजी प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए बच्चों ने सामग्री का उपयोग किया एवं छड़ों के प्रतिरूप का निर्माण किया। बच्चे एक अकेले वर्गाकार घन को रंग के छापे की तरह प्रयोग करते हैं, जिससे वे 1 से लेकर 10 तक की लम्बाई की छड़ों को भौतिक रूप से जाँच पाएँ या सोच कर दिमागी छवि बना पाएँ। जैसे ही बच्चों ने इन छड़ों की समस्या को हल किया, उन्होंने आँकड़ों को दर्ज किया, उन्हें एक तालिका में व्यवस्थित किया, और वे इस तालिका का प्रयोग संख्याओं में पैटर्न ढूँढ़ने के लिए करने लगे।

अगले काम के रूप में बच्चों ने

12, 25 और 100 इकाई लम्बाई की छड़ों को रंग करने के लिए ज़रूरी छापों की संख्या पता लगाई। 100 लम्बाई की छड़ जैसी बड़ी संख्या की समस्या को हल करने के लिए बच्चे छड़ों की लम्बाई और रंग करने के लिए ज़रूरी छापों की संख्या के सामान्यीकृत सम्बन्ध को खोजने के लिए प्रेरित हुए। बच्चों ने इसके लिए अपनी पसन्द की विधि चुनी - शब्द, रेखाचित्र या उनके खुद के बनाए हुए चिन्ह - जो एक नियम की तरह उनके पैटर्न की सामान्यीकृत समझ को प्रदर्शित कर सके। और अन्ततः बच्चों ने मौलिक परिस्थिति के सन्दर्भ में अपने नियम को प्रस्तुत किया।

अपनी सोच को बढ़ावा देने के लिए बच्चे सोचने लगते हैं कि दिए गए परिणाम (आउटपुट) को प्राप्त करने के लिए उन्हें क्या करना (इनपुट देना) होगा। उदाहरण के लिए 'रंगी हुई छड़' में बच्चों से कहा गया कि वे अपनी पैटर्न की समझ का उपयोग करके इस प्रश्न को खोजें - "यदि छड़ को रंगने में 86 छापे लगते हैं तो छड़ कितनी लम्बी होगी?" एक और तरीका जिससे बच्चे की सोच बढ़ती है, उनसे इसी तरह के परन्तु अधिक कठिन सवाल पूछने का है। उदाहरण के लिए 'नदी पार करना' के पूरे होने के बाद बच्चों से उसी तरह की समस्या को अलग-अलग बच्चों की संख्या के साथ करने के लिए कहा गया। "पैटर्न का क्या होगा, यदि हमारे पास बच्चों की संख्या भिन्न हो? (अ) 8 वयस्क और 3 बच्चे (ब) 2 वयस्क और 5 बच्चे?" वैसे ही 'रंगी हुई छड़ें' के बाद बच्चों से दुगनी लम्बाई वाली छड़ों की समस्या को हल करने के लिए कहा जा सकता है। साथ ही संख्याओं एवं आकारों में पैटर्न की इकाई का पाठ बच्चों को पैटर्न तलाशने, पैटर्न पहचानने और सामान्यीकृत करने की खोजी प्रक्रिया को सीखने के विविध अवसर प्रदान करता है। बच्चे प्रत्येक पाठ में इस प्रक्रिया से जूझते हैं और फलस्वरूप इस इकाई के पूरे होते-होते वे उन स्थितियों जिनमें पैटर्न उपस्थित हैं, को हल करने की पद्धति को समावेशित (इन्टर्नलाइज़) कर लेते हैं। प्रक्रिया उपयोग करने की रणनीति में प्रत्यक्ष है, तालिका, ग्राफ और मौखिक नियम जिनका उपयोग वे पैटर्न बताने में

नियम यह है कि हमेशा 1 वयस्क को पार कराने में 4 एक तरफ की पारियाँ लगेंगी। तो आपको वयस्कों की संख्या में 4 गुणा करके अपने उत्तर में 1 जोड़ना चाहिए। आप 1 जोड़ते हैं क्योंकि बच्चों का उपयोग वयस्क के साथ होता है। अतः 100 वयस्कों के साथ आपको यह करना चाहिए 100 बार 4 और + 1

उदाहरणः 100 X 4 = 400 + 1 = 401= उत्तर

{A X 4} + 1 = पारियाँ

चित्र-8: बच्चे ने सामान्यीकृत नियम को चिन्हों के साथ स्पष्ट रूप से बताया और यह समझाया कि यह मौलिक स्थिति से किस प्रकार सम्बद्ध है।

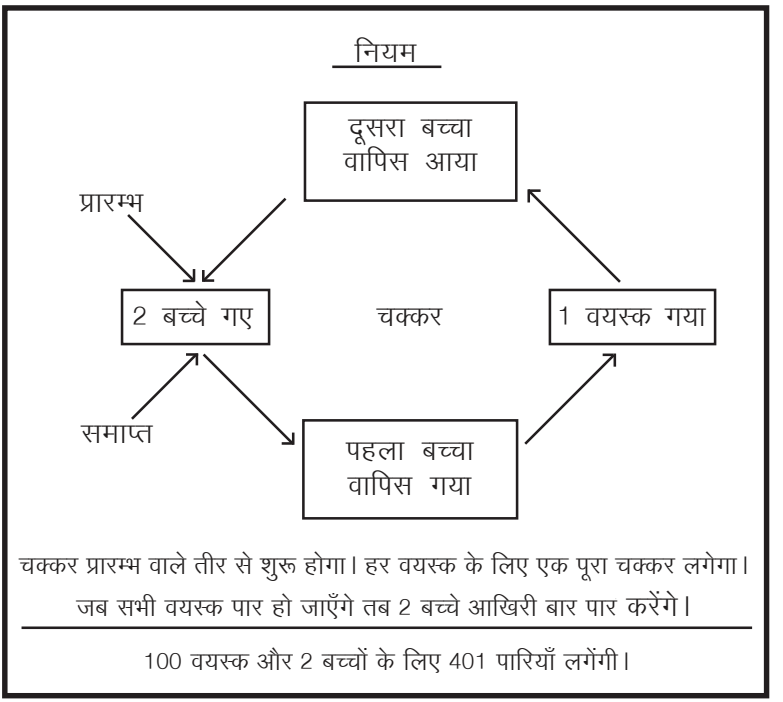

चित्र-9: एक और बच्चे ने सामान्यीकृत नियम निकाला और समझाया कि यह मौलिक स्थिति से किस प्रकार सम्बद्ध है।

करते हैं, और सामान्यीकृत नियम जिसे वे स्पष्ट रूप से बताते हैं। अब यदि उनके सामने भविष्य में पैटर्न से जुड़ी कोई समस्या आएगी तो उनके पास उस समस्या को सुलझाने के लिए रणनीति होगी।

इस इकाई का एक और सकारात्मक प्रभाव ठोस परिस्थिति पर एक नियम को सामान्यीकृत करने की बच्चे की अनुभूति की क्षमता पर है, जो है, बीजगणितीय रूप से सोच पाना। जैसे-जैसे बच्चे प्रक्रिया का अनुसरण करते हैं, वे पैटर्न को ढूँढ़ने में सक्षम हो जाते हैं, और उसे एक सामान्यीकृत नियम की तरह व्यक्त करते हैं। एक बच्चा लिखता है - "सूत्र को निकालना रोमांचक है। यह किसी पुरातत्ववेता को पुरावशेष मिलने के समान है।" किसी सूत्र को खोज पाना बच्चों को सफल महसूस कराता है, और इसके

परिणाम स्वरूप वे खुद को बीजगणित के एक सक्षम विद्यार्थी की तरह देखते हैं। शिक्षक जिन्होंने इस इकाई को (क्षेत्र परीक्षण में) पढ़ाया था ने बयान किया कि - "बच्चे आत्मविश्वासपूर्ण हैं, उन्हें लगता है वे अच्छा कर रहे हैं।" "उन्हें लगता है कि वे स्मार्ट हैं। वे जानते हैं कि उनके बड़े भाई व बहन बीजगणित करते हैं।" बच्चों की बीजगणितीय सोच में लगे रहने की क्षमता से बढ़ता आत्मविश्वास निश्चित ही बीजगणित के प्रति उनके सकारात्मक नज़रिए को बनाने में योगदान देता है। उनके सकारात्मक नज़रिए का, उनकी खोजी प्रक्रिया के उपयोग और उनकी बीजगणितीय सोच की नई ताकत के साथ संयोजन कक्षा छठवीं के बच्चों को एक मज़बूत आधार देता है, जिस पर वे समस्त माध्यमिक कक्षाओं के दौरान अपनी बीजगणित की औपचारिक समझ का निर्माण कर सकते हैं।

क्रिस्टन हर्बर्ट: पिछले कई वर्षों से एजुकेशन डेवलपमेंट सेंटर (ईडीसी) में पाठयक्रम बनाने का काम कर रही हैं। उनकी खास रुचि बीजगणित एवं बच्चों के आकलन में है।

रेबेक्का एच. ब्राउन: रेबेक्का ब्राउन ईडीसी में एक कक्षा शोधकर्ता हैं। उनकी खास रुचि बीजगणित एवं तकनीक में है। कक्षा में शोध के इस कार्य को जारी रखने की उनकी योजना है।

दोनों ही लेखक उन सभी शिक्षकों एवं बच्चों के बहुत आभारी हैं, जिन्होंने इस इकाई का क्षेत्र परीक्षण किया। वे ईडीसी के अपने सहकर्मियों की भी आभारी हैं जिन्होंने इस इकाई को बनाने में सहयोग दिया, और साथ ही चार्ल्स लोविट की भी जिन्होंने इस इकाई के कई प्रश्नों का प्रारम्भिक स्वरूप तैयार किया।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: निदेश सोनी एवं गणित समूह, एकलव्य।

यह लेख 'Algebrain Thinking, Grades K-12: Readings from NCTM's School-Based Journals and Other Publications (Reston, Va.: National Council of Teachers of Mathematics, 2000) pp 123-28' से लिया गया है।

बच्चों के साथ विज्ञान

अनीश मोकाशी

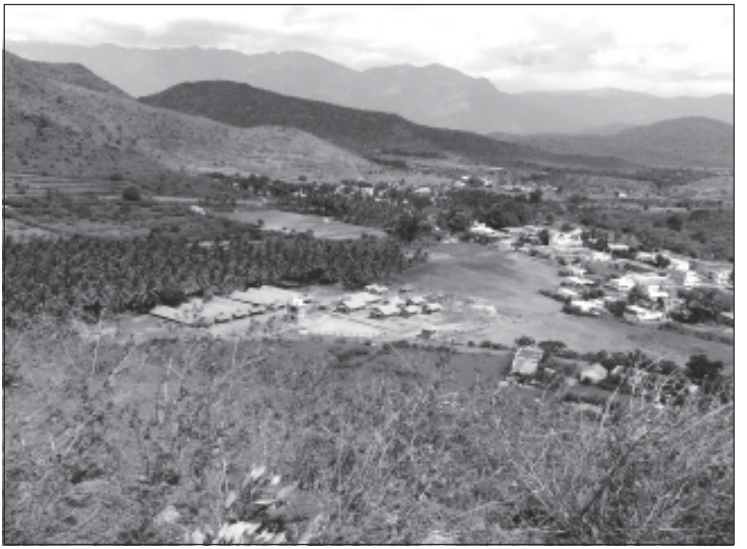

मैं तीन महीने तक कोयम्बतूर के निकट आनैकट्टी में स्थित विद्या वनम् नाम के एक वैकल्पिक स्कूल में विज्ञान शिक्षक था। विद्या वनम् श्रीमती प्रेमा रंगाचारी द्वारा संचालित एक अँग्रेज़ी माध्यम स्कूल है जो एन.सी.ई.आर.टी. के पाठ्यक्रम का अनुसरण करता है। स्कूल का शिक्षण-दर्शन है कि कक्षाएँ प्रयोग-आधारित हों और साथ-साथ वह विद्यार्थियों को नैशनल ओपन स्कूलिंग (राष्ट्रीय मुक्त स्कूली शिक्षा) की बोर्ड परीक्षाओं के लिए तैयार करता है। आनैकट्टी से ऊटी के पहाड़ दिखाई देते हैं, और यह नीलगिरी पर्वत माला पर से गुज़रने वाले हाथियों के एक महत्वपूर्ण गलियारे में स्थित है। उसके पास में ही सालिम अली पक्षी-विज्ञान एवं प्रकृति विज्ञान केन्द्र तथा नीलगिरी बायोस्फीयर रिज़र्व हैं। स्कूल के बच्चे आसपास के गाँवों से हैं और अपने परिवार में औपचारिक शिक्षा पाने वालों की पहली पीढ़ी हैं। उनमें से अधिकांश

इरूला जनजाति समुदाय के हैं। स्कूल का माहौल बच्चों और शिक्षकों के बीच मुक्त संवाद का है, और बच्चों का श्रीमती रंगाचारी से भी अत्यन्त अपनत्व भरा रिश्ता है (उनको वे 'पाटी' यानी दादी-नानी कह कर सम्बोधित करते हैं)। मैं यहाँ विद्या वनम् स्कूल के बच्चों के साथ हुए अपने कुछ ऐसे अनुभव साझा करना चाहता हूँ जिन्होंने मुझे बच्चों तथा विज्ञान के बारे में प्रचलित कुछ आम धारणाओं पर पुनर्विचार करने के लिए मजबूर किया।

भौतिकी का एक विद्यार्थी

आई.आई.टी. बॉम्बे में इंजीनियरिंग भौतिकी में बी.टैक. कर रहे एक विद्यार्थी के रूप में मुझे लगता था कि मेरी पढ़ाई टुकड़ों-टुकड़ों में हो रही थी। हमारे लिए एक ही सेमिस्टर में बहुत सारी सामग्री इकट्ठी कर दी गई थी, और विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रमों में परस्पर तालमेल नहीं दिखाई पड़ता था, जैसे कि उनमें से प्रत्येक किसी अलग संसार की बात कर रहा हो। हम विद्यार्थियों में तैयारी नहीं थी कि खुद ही उनके सम्बन्धों को खोज सकते और उन सबका व्यापक सन्दर्भ समझ सकते। हमें ऐसा लगता था कि ज्ञान के संचित किए गए समस्त भण्डार के पहाड़ के शिखर पर चढ़ चुकने के बाद ही हमें कुछ रोचक करने का, या उसकी झलक पाने का मौका मिलेगा। कुछ कोर्स छोड़ कर, हमें अन्वेषण-पूर्ण सीखने की प्रक्रिया के लिए अवसर तभी मिलता था जब हम प्रोजेक्ट पर काम कर रहे होते थे।

मैं एनवाईरन्मेंटल जस्टिस (पर्यावरण से मिलने वाले लाभ और उसके भार को समाज में न्यायपूर्वक बाँटने) के आन्दोलन से भी सक्रिय रूप से जुड़ा हुआ था, और आदिवासी लोगों पर हो रहे सामाजिक तथा पर्यावरण सम्बन्धी अन्याय को, तथा मानवीय गरिमा से सर्वांग रूप से उन्हें वंचित किए जाने की प्रक्रिया को स्वयं अपनी आँखों से देखने के अनुभव, तथा अपने शिक्षा संस्थान के शान्त, सौम्य माहौल के बीच सामंजस्य बिठाना मेरे लिए कठिन था।

अमेरिका में स्नातकोत्तर अध्ययन के दौर - जिसमें अध्ययन की गहन तथा रोचक पाठ्यचर्या, वहाँ की लोकतांत्रिक व्यवस्था, यदा-कदा पढ़ाने, और बहुत निम्न तापक्रमों पर 2D इलेक्ट्रॉन तंत्रों पर प्रयोग करते हुए पूर्णकालिक शोधकार्य करने के अनुभव शामिल थे - ने मेरे जीवन को काफी समृद्ध बनाया। शोधकार्य व्यक्ति को सीखने की नई परिस्थितियों से जूझने का व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है - लगभग शून्य से प्रारम्भ करने का आत्मविश्वास, अपने अज्ञान का सामना करने और सहायता माँग कर प्राप्त करने का, समस्याओं की गुत्थियों को सुलझाने का, कभी-कभी नई तरकीबें निकालने का, और कभी कामों को करने के किसी खास तरीके को पूरी तरह त्याग देने का आत्मविश्वास देता है। व्यक्ति सीखता रहता है और नई

अवधारणाओं और विचारों का उपयोग करता रहता है, तथा अन्ततः यह पूरी प्रक्रिया आपको भरपूर धैर्य की देन दे जाती है।

अपने शोध प्रबन्ध की सफल प्रस्तुति व वकालत के बाद, मैंने एक ऐसे विषय पर कार्य करने का निर्णय लिया जिसने मुझे लम्बे समय से परेशान कर रखा था - उन कारकों की पहचान करना जो लोगों को अपने अध्ययन में, विशेष रूप से विज्ञान में, जिसे आम तौर पर कठोर और निर्वैयक्तिक (impersonal) विषय की तरह देखा जाता है, अर्थ ढूँढ़ने में मदद करते हैं। साथ ही, जिस तरह से विज्ञान को सीखा और सिखाया जाता है उसमें मैं शोध करने की संस्कृति के तरीकों का समावेश करना चाहता था।

निर्भय

मैंने स्नातकीय विद्यार्थियों को ज़रूर पढ़ाया था लेकिन मुझे बच्चों के साथ काम करने का कोई अनुभव नहीं था। विद्या वनम् में मैं 8 से 12 साल के ऐसे बच्चों का शिक्षक था जिन्हें उस स्कूल में पढ़ते हुए 4 से 5 साल हो गए थे। उनमें से अधिकांश को मुझसे बात करने में कोई संकोच नहीं था - उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं कौन था, क्या करता था, मेरे माता-पिता कहाँ रहते थे। और फिर, उन्होंने अपने बारे में मुझे ढेर सारी बातें बताईं - उन्हें क्या पसन्द था, उनका सबसे अच्छा दोस्त कौन था और उनके कितने भाई-बहिन थे। मेरी पहली कक्षा में, उस कक्षा के आठ साल के बच्चों ने एकदम अनायास ही मेरे लिए एक समूह नृत्य करने का निर्णय लिया। उन्होंने मुझे अपने बीच सहज महसूस कराने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। उनके बोलने में या चेहरे पर भय का कोई आभास नहीं था। जब भी उन्हें कक्षा के लिए कोई रोचक या प्रासंगिक बात मिलती तो वे तुरन्त उसे बताते थे। उन्होंने सहज ही मेरा नाम अनीश अण्णा रख दिया।

ध्वनि से अच्छी शुरुआत

मैंने ध्वनि से शुरुआत करने का निर्णय लिया क्योंकि ध्वनि एक ऐसा विषय है जिससे बच्चे आसानी से जुड़ सकते हैं और यह उनके विज्ञान

के पाठ्यक्रम के निर्धारित विषय-प्रसंगों की सूची में भी था। मैंने उन्हें एन.सी.ई.आर.टी., एच.बी.सी.एस.ई. (स्मॉल साइंस सीरीज़), और एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम द्वारा तैयार की गई विज्ञान की गतिविधि-आधारित पाठ्यपुस्तकों (बाल वैज्ञानिक) के बारे में, तथा अरविन्द गुप्ता के कार्य के बारे में बताया। नई-नई युक्तियाँ निकाल कर तथा कभी-कभी इन स्रोतों से मिले विचारों को अपने तरीके से उपयोग करते हुए, हमने ध्वनि से सम्बन्धित अनेक अवधारणाओं की छानबीन की।

हमने शुरुआत स्कूल के वातावरण की ध्वनियों का अवलोकन और निरीक्षण करने से की - बहुत गहराई से सुनते हुए हमने उनकी दिशा पहचानी, उनके स्रोत को ढूँढ़ निकाला और फिर एक ध्वनि मानचित्र तैयार किया। कुछ बच्चों ने अवलोकन का यह अभ्यास अपने घर पर भी दोहराया और तस्वीरों सहित विस्तृत ध्वनि-मानचित्र तैयार किए। एक आठ साल के बच्चे, सबरीश ने अपनी सूची में 'जब रात को सन्नाटा होता है, तब ट्यूब लाइट से आने वाली आवाज़' तक को शामिल किया।

अगले दिन, हमने नारियल के कठोर बाहरी खोलों पर प्लास्टिक की थैलियाँ बाँध कर बजाने वाले ड्रम तैयार किए। कुछ बच्चों ने इनके भीतर कुछ बीज और छोटे कंकड़ डाल दिए और इस तरह झुनझने जैसे बजने वाले ड्रम बनाए। हम इस विचार तक पहुँच सके कि हर ध्वनि के पीछे कोई ऐसी चीज़ होती है जो कम्पन करती है, फिर चाहे वह हमारा गला हो या तबला, गिटार का तार, रबर का छल्ला, पत्ती या कागज़ की बनाई गई सीटी हो। हमने देखा कि किस तरह एक बोतल में अलग-अलग तल तक पानी भरने के बाद बोतल के मुँह पर से फूँकने पर निकलने वाली आवाज़ की पिच (उसका भारी या पतला होना जो उसकी आवृत्ति से जुड़ा हुआ है) बदलती है। एक बार, हमने पिच के बारे में बात करने के लिए एक बाँसुरी का इस्तेमाल करते हुए उससे अलग-अलग स्वर निकाले। उन्हें बहुत मज़ा आया और उन्होंने बार-बार गुज़ारिश करके मुझे काफी देर तक बाँसुरी बजाने के लिए मजबूर किया। मुझे यह अहसास हुआ कि जो चीज़ इन बच्चों को पसन्द आ जाती थी वे मन लगाकर उसके पीछे पड़ जाने वाले बच्चे थे।

बाल्टी कला

अगली कक्षा में मैं पानी से भरी एक बाल्टी लेकर आया, यह समझाने के लिए कि जिस तरह पानी में लहरें फैलती हुई यात्रा करती प्रतीत होती हैं*, उसी तरह किसी वस्तु से निकलने वाले कम्पन हवा में फैलते हुए यात्रा

असल में पानी में कंकड़ डालने पर पैदा होने वाली लहरें फैलती नहीं हैं। एक छोटा-सा लकड़ी या कागज़ का टुकड़ा पानी की सतह पर रखकर फिर उसमें लहरें पैदा करके आप यह देख सकते हैं।

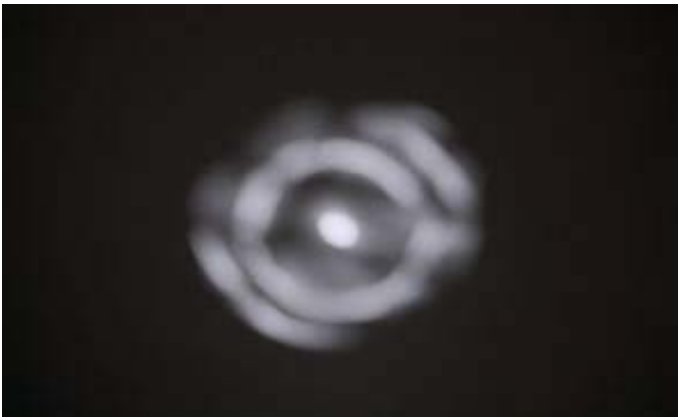

चित्र-1: बाल्टी कला

करते हैं और हमें ध्वनि सुनाई देती है।

उस दिन, सुबह की रोशनी बाल्टी में भरे पानी की सतह पर पड़ रही थी और उसका प्रतिबिम्ब कमरे की छत पर प्रोजेक्ट हो रहा था। बाल्टी को सिर्फ हल्का-सा धक्का देने से, या मेरे गीले हाथ से बूँदों के उसमें टपकने भर से छत पर झलकने वाले प्रतिबिम्ब में बहुत नाटकीय और चकित करने वाली संरचनाएँ पैदा हो रही थीं। प्रतिबिम्ब के प्रकाशित और छाया वाले हिस्सों में गति करती हुई पानी की लहरें/हिलकोरे बहुत साफ दिखाई देती थीं और उनको देखकर विस्मय से बच्चों की किल-कारियाँ निकल रही थीं। इस चमत्कारी दृश्य का अवलोकन करते हुए और उसको सराहते हुए हमने कुछ समय बिताया और मैंने इस तथ्य पर ज़ोर देने का प्रयास किया कि हम तरंगों को देख रहे थे[1] (चित्र 1)।

स्वर पकड़ना

हमने एक ट्यूनिंग फॉर्क के कम्पनों को सुना और अनुभव किया, और उसके एकल स्वर वाले गुंजन को ध्यान से सुनते हुए पकड़ा। वह सभी बच्चों के बीच बड़ा लोकप्रिय खिलौना बन गया और हर कोई उसे किसी मित्र द्वारा कान के पास लाए जाने पर महसूस होने वाली गुदगुदी का मज़ा लेना चाहता था। उन्होंने उससे विभिन्न चीज़ों - जैसे कि एक प्लास्टिक की थैली, टिफिन का डिब्बा, नारियल की खोल का ड्रम, पेन्सिल बॉक्स, कपड़े, इत्यादि - को छुआ और इसके कारण उत्प्रेरित कम्पनों से पैदा होने वाली ध्वनि को सुना। एक बच्चे ने उत्प्रेरित कम्पनों का इस प्रकार वर्णन किया -

[1] *विडियो देखने के लिए इस लिंक पर जाएँ: https://www.youtube.com/watch?v=fMSp9vqEOu0*

"जब हम ट्यूनिंग फॉर्क को छूते हैं, तो कम्पन हमारे हाथों में प्रवेश कर जाते हैं।"

मैंने सोचा कि यदि हम ट्यूनिंग फॉर्क को पानी में लहरें पैदा करते हुए देख सकें तो इससे हवा में ध्वनि की तरंगों के विचार को जोड़ने में आसानी होगी। मैं उसे बाल्टी में भरे पानी की सतह के नज़दीक ले गया और हमने देखा कि उसके कारण निर्मित तरंगें एक-दूसरे के बहुत नज़दीक थीं। छत पर प्रक्षेपित प्रतिबिम्ब के कारण इसे देख पाना आसान था, पर फिर भी वह उतना स्पष्ट नहीं था जितनी मैंने अपेक्षा की थी। वास्तव में, जिस तरह ट्यूनिंग फॉर्क पानी उछाल रही थी बच्चे उससे अधिक आकर्षित थे।

एक 12 साल के बच्चे ने, जिसका नाम प्रसन्ना वेंकटेश था, ट्यूनिंग फॉर्क ले ली और जब बाकी कक्षा आगे की चर्चा में लग गई, वह फॉर्क से पानी छपछपाने में लगा रहा। लगभग आधे घण्टे बाद, प्रसन्ना ने मुझे पुकारकर कहा, "अण्णा, मैं आपको यह दिखाना चाहता हूँ।" वह बाल्टी के बगल में बैठा था और उसके चारों ओर पानी बिखरा हुआ था। उसने रबर की एक हथौड़ी से ट्यूनिंग फॉर्क पर चोट की और उसको पानी में डुबोने की बजाय, पानी को उसके ऊपर उँडेला! फिर जो देखा उस पर मैं यकीन नहीं कर पा रहा था। जब तक फॉर्क का कम्पन

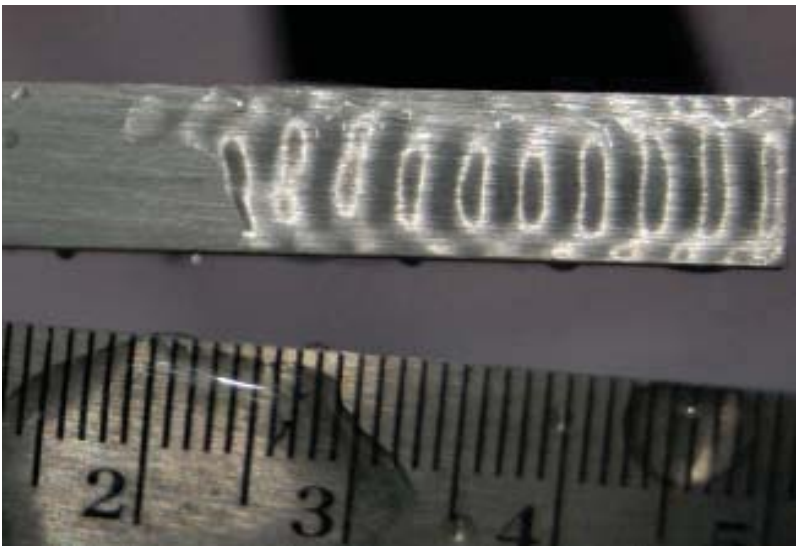

चित्र-2: ट्यूनिंग फॉर्क के ज़रिए सतह की गुरुत्वाकर्षण तरंगों के स्पष्ट दिखाई देते शिखर

करना जारी रहा इस पानी पर अत्यन्त जटिल प्रतीत होने वाली संरचनाएँ दिखाई देती रहीं[2]।

प्रसन्ना ट्यूनिंग फॉर्क पर गिरे पानी की सतह पर गुरुत्वाकर्षण तरंगों को देख रहा था। ट्यूनिंग फॉर्क में ही हो रहे कम्पन इन तरंगों को संचालित करते हैं। तीव्र शटर गति पर ली गई एक फोटो ने सतह की इन गुरुत्वाकर्षण तरंगों को प्रकट किया (चित्र-2)।

हर साल, अनेकों विद्यार्थी आंशिक रूप से भरे हुए पानी की एक नली/स्तम्भ के मुँह पर एक कम्पन करती हुई ट्यूनिंग फॉर्क पकड़े अनुकम्पन (resonance) खोजने का प्रयोग करते हैं। लेकिन अनुकम्पन की खोज के 300 वर्षों बाद तक, क्या किसी ने भी ट्यूनिंग फॉर्क की सतह पर पानी उड़ेलने के सीधे-सरल तरीके के बारे में नहीं सोचा था? या फिर विद्यार्थियों से यह अपेक्षा नहीं होती है?

क्या हम ध्वनि को देख सकते हैं?

एक दिन मैं कक्षा में ज़ोर से बोलते हुए सोच रहा था कि निश्चित रूप से हम ध्वनि को सुन तो सकते हैं पर क्या कोई ऐसा तरीका है कि हम उसे देख सकें? किसी को धुआँ पैदा करने का खयाल आया तो हमने कुछ कागज़ जलाए और उससे निकलने वाले धुएँ में कम्पन करती हुई ट्यूनिंग फॉर्क को रखा। लेकिन ट्यूनिंग फॉर्क के कम्पन शायद इतने ज़्यादा कमज़ोर थे कि वे कोई दर्शनीय प्रभाव नहीं पैदा कर सके। हमें धुएँ में गिटार के तार को छेड़ने का खयाल नहीं आया जिसका प्रभाव, हो सकता है कि देखा जा सकता। फिर अनायास ही 12 साल के ऋषिकेश को एक अद्भुत बात सूझी (उसका यूरेका क्षण!) और उसने चिल्लाकर कहा, "अण्णा, पाउडर! पाउडर!" हमने कुछ टैल्कम पाउडर मँगाया और उसे एक उल्टे रखे हुए गिलास पर फैलाया। फिर हमने कम्पन करती हुई ट्यूनिंग फॉर्क से उसे छुआ लेकिन गिलास बहुत वज़नी था और इसलिए कुछ नहीं हुआ। फिर हमने एक स्टील प्लेट ली और उस पर पाउडर फैला कर ऐसा ही किया। इस बार जब भी हम प्लेट से ट्यूनिंग फॉर्क को छुलाते तो हर बार पाउडर अपनी जगह से खिसकता था। लगातार ऐसे करने पर, पाउडर ने प्लेट की सतह पर छोटी और बड़ी ढेरियों में इकट्ठा होकर एक विशेष संरचना निर्मित कर ली, और 12 वर्ष के पवन कुमार ने गौर कर के कहा कि वह एक तितली जैसी दिखती थी।

यह क्लाडनी संरचनाओं - जिनमें हम गोल सीमा रेखा से परावर्तित होने के कारण बनने वाली दो-आयामी खड़ी तरंगों (standing waves) के ऐन्टी-नोड (!) को अलग-अलग आकारों की ढेरियों की स्थिति का निरीक्षण

[2] *विडियो इस लिंक पर उपलब्ध है:*
https://www.youtube.com/watch?v=0UbH9nhjhR8

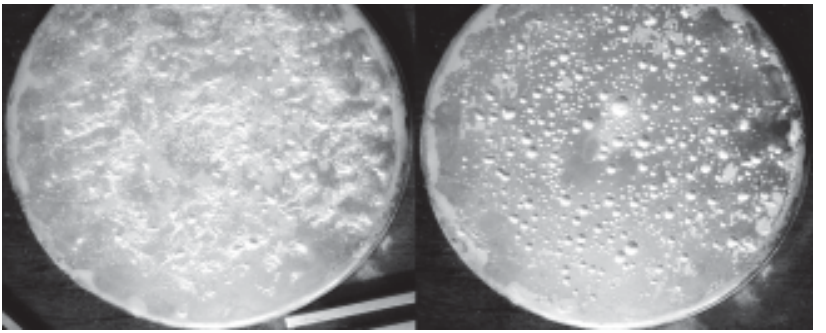

चित्र-3: तितली जैसी दिखती है!

करके खोज सकते थे - को हासिल करने का आसान तरीका था। बाद में हमने एक तबले की जोड़ी (दायाँ एवं डिग्गा) पर पाउडर डाला और फिर उसकी झिल्ली में होने वाले कम्पनों से पाउडर की ढेरियों को बनते हुए देखा (चित्र-3)। वह आकृति भी तितली जैसी दिखती है!

इसके बाद कुछ दिन बीत गए, फिर प्रसन्ना ने ऋषिकेश की सूझ को अपनाते हुए एक कम्पन करती हुई ट्यूनिंग फॉर्क पर सीधे टैल्कम पाउडर डाला। पाउडर ढेरियों में इकट्ठा हो गया जो थरथराती हुई खिसक कर ट्यूनिंग फॉर्क की मध्य रेखा पर आ गई। यहाँ इस बात पर गौर करना उल्लेखनीय है कि माइकल फैराडे ने इसी प्रयोग को लाइकोपोडियम पाउडर का उपयोग करते हुए 1830 के दशक में किया था और यह वर्तमान शोध का विषय भी है। जर्ल वॉकर के 'द फ्लाइंग सर्कस ऑफ फिज़िक्स' से लिया गया यह अंश इस सन्दर्भ में बहुत शिक्षाप्रद है: *धूल, रेत से भी हल्की होने की वहज से, उस हवा से प्रभावित होती है जो कम्पन के कारण प्लेट के ठीक ऊपर शुरू हो जाती है। प्लेट के बिलकुल पास में हवा एक नोड से बगल के ऐन्टी-नोड तक चलकर फिर ऊपर, प्लेट से दूर हट जाती है। इस तरह, हवा ऊपर बहने से पहले, धूल को नोड से बगल के ऐन्टी-नोड तक ले जाकर जमा देती है।*

गुरुत्वाकर्षण के खिलाफ गति

प्रसन्ना ने पाया कि यदि हम ट्यूनिंग फॉर्क को थोड़ा-सा (छोटे-छोटे कोणों पर) झुकाएँ तब भी पाउडर की ढेरियाँ गुरुत्वाकर्षण के खिलाफ धीरे-धीरे ट्यूनिंग फॉर्क पर ऊपर की ओर खिसकतीं रहती हैं[3] (चित्र 4)!

[3] *विडियो देखने के लिए इस लिंक पर जाएँ:*
https://www.youtube.com/watch?v=nOLmc0pUesY

रसायन शास्त्र और कविता

एक बार, जब एक सांस्कृतिक कार्यक्रम की तैयारियाँ चल रही थीं तब जो बच्चे उसमें भाग नहीं ले रहे थे, वे पुस्तकालय में अपना समय बिता रहे थे। उनमें से कुछ विज्ञान के कक्ष में आए और रोमांचित भाव से मुझे एक किताब में कुछ दिखा कर बोले कि वे उस प्रयोग को करने की कोशिश करना चाहते थे।

बच्चे एक बीकर में कुछ पानी, बैटरियाँ, एक छोटा बिजली का बल्ब, कुछ नमक और तांबे के तार ले आए। वे यह प्रयोग करके देखना चाहते थे कि नमकीन पानी सामान्य पानी की तुलना में अधिक विद्युत सुचालक होता है। हम सोचते रहे कि पानी में इलेक्ट्रोड का काम करने के लिए क्या डुबोया जाए। फिर मैंने कुछ पेपर क्लिप्स को सीधा किया और तांबे के तारों को उन पर लपेट दिया और इस काम के लिए इस्तेमाल किया। पानी में कुछ नमक मिलाने के बाद, हमने एक इलेक्ट्रोड के पास कुछ छोटे-छोटे बुलबुले बनते हुए देखे लेकिन बल्ब नहीं जला। दो बच्चों ने दो बैटरियों को सीरीज़ क्रम में यह कारण बताते हुए जोड़ दिया कि टॉर्च में रोशनी पाने के लिए दो बैटरियों की ज़रूरत पड़ती है, और तब बल्ब बहुत धीमे-से टिमटिमाया। अब कुछ बच्चों ने पानी में और नमक मिलाया। बल्ब और तेज़ी से चमकने लगा तथा और अधिक बुलबुले भी दिखाई दिए। उसी समय पवन कुमार बोल पड़ा, "अण्णा, यह एक जलप्रपात जैसा दिखता है, लेकिन उल्टे जलप्रपात-सा!" (चित्र-5)।

जिस बात की जाँच करने के लिए प्रयोग शुरू किया था, हम उसकी पुष्टि कर चुके थे, और मैं उम्मीद कर रहा था कि अब वे सब चीज़ें समेट कर उसे समाप्त करेंगे। लेकिन यह उनके लिए काफी नहीं था। वे अब उसमें पूरी तरह डूब गए थे। कोई

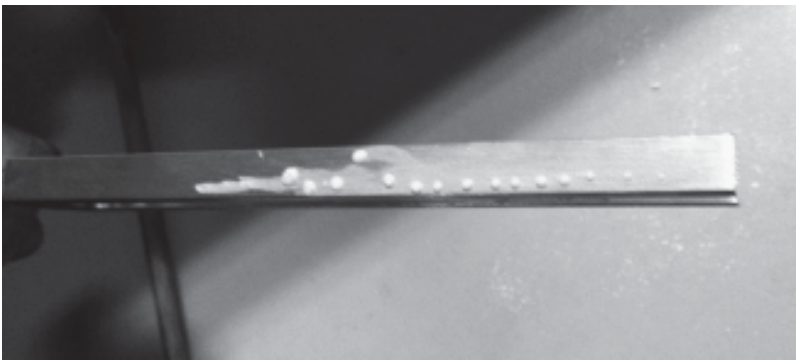

चित्र-4: ट्यूनिंग फॉर्क पर पाउडर की ढेरियाँ

गुरुत्वाकर्षण के खिलाफ पाउडर के ढेरों की गति

इसका एक सम्भावित कारण यह हो सकता है कि ट्यूनिंग फॉर्क का खुला मुक्त हिस्सा, जो फॉर्क के बाकी हिस्से की तुलना में (प्राइमरी वाइब्रेशनल मोड में) अधिक आयाम से गति करता है, ऊर्जा की एक उच्चतर अवस्था को निरूपित करता है, और मुक्त छोर पर पाउडर की ऊर्जा तथा स्थिर छोर पर पाउडर की ऊर्जा का अन्तर उनकी गुरुत्वाकर्षण स्थितिज ऊर्जाओं के अन्तर से अधिक है (चित्र 4)।

दूसरी ओर, ट्यूनिंग फॉर्क की बाहरी सीमाओं पर हवा की प्रेरित धाराओं (ध्वनि के निरन्तर प्रवाह; acoustic streaming) की गति जो पाउडर की ढेरियों की गति के रूप में प्रकट होती है, वह स्वाभाविक रूप से, हो सकता है, कि झुकाव रेखा पर पड़ने वाले पाउडर के भार के क्षीण भाग की तुलना में कहीं ज़्यादा शक्तिशाली प्रभाव डालती हो, क्योंकि झुकाव का कोण खुद बहुत कम होता है।

रसोईघर से और नमक ले आया और उसे पानी में डालकर मिलाता रहा, और वे निरीक्षण करते रहे कि बुलबुले और ज़ोर से पैदा हो रहे थे। कुछ समय बाद नमक का वह घोल संतृप्त हो गया, और उन्होंने उसमें नमक डालना बन्द कर दिया। फिर वह घोल रंग बदलने लगा! ज़ोरदार किलकारियों, विस्मित आवाज़ों और 'जादुई पानी' की पुकारों के बीच, हमने देखा कि पानी पहले धुँधला पीला हुआ, फिर हल्का-सा जैतूनी हरे रंग का, और फिर गहरे हरे रंग का (वह एनोड से निकलने वाला अवक्षेप था जो धीरे-धीरे तली में बैठ गया, चित्र 6)। अगली सुबह हमने बीकर की तली में नारंगी-भूरी गाद जमी देखी जिसके ऊपर अपेक्षाकृत साफ पानी था, और एनोड काफी बुरी तरह गल चुका था[4]।

कैथोड पर बुलबुलों के रूप में हाइड्रोजन गैस मुक्त होती है (इसकी पुष्टि उसके ऊपर जलती हुई माचिस की तीली लाने पर होने वाली 'फट' की आवाज़ से हुई) और फैरस आयन पैदा होते हैं (जिनका ऑक्सीकरण होने से वे फैरिक में बदल जाते हैं)। यह क्रिया पेपर क्लिप एनोड के लौह परमाणुओं के नमक के पानी में प्रवेश करने के कारण होती है।

प्रकाश और आवेश

हमने यह दिखाने के लिए कि प्रकाश एक सीधी रेखा में गति करता है, एक पिनहोल (सूक्ष्म-छिद्र) कैमरा

[4] *विडियो देखने के लिए इस लिंक पर जाएँ:*
https://www.youtube.com/watch?v=79R6E3XPKJQ

बनाया। उसके बाद, हमने एक कागज़ को पहले तेल में डुबो कर और फिर सुखाकर उसे एक पारभासी परदे की तरह इस्तेमाल करके, उस पर एक जलती हुई मोमबत्ती की उलटी छवि देखी। कुछ बच्चों ने इसे कागज़ में कई और छेद करके आज़माया और परदे पर एक मोमबत्ती की कई छवियाँ देखीं, जैसा कि फिल्मों में कभी-कभी विशेष प्रभाव पैदा करने के लिए किया जाता है। हमने (खाना लपेटने वाली) एल्यूमिनियम की फॉइल से एक छोटा-सा टुकड़ा लेकर एक इलेक्ट्रोस्कोप बनाया, उसके एक किनारे को तांबे के तार से बने एक हुक पर फँसा कर उसे एक बीकर में लटकाया, फिर जब हम तेज़ी से रगड़ी गई कंघी को उस काँटे के पास लाए तो हमने एल्यूमिनियम की पन्नी के टुकड़ों की तहों को खुल कर फैलते हुए देखा। पुरानी सीमेंट की थैलियों से निकाले गए रेशों का इस्तेमाल करते हुए (जो श्री राजीव वर्तक की सूझ थी) हम स्थितिज आवेशों (static charges) के बारे में काफी कुछ समझ सके। ऐसे कई रेशों को एक छोर पर इकट्ठा पकड़कर खींचने से रगड़ने पर वे एक-दूसरे से दूर हटते हुए दिखाई दिए - जो समान आवेशों का विकर्षण दर्शाता है। एक घिसा गया रेशा दूसरे 'न घिसे गए' रेशे के प्रति आकर्षित होगा क्योंकि वह उस पर आवेशों को प्रेरित करता है। हमारे हाथ भी घिसे गए रेशों के प्रति आकर्षित होते हैं और इसलिए वे रेशे हमारे शरीर से चिपक जाते हैं, जैसे कि हम कोई विशाल मकड़ी या ऑक्टोपस

चित्र-5: उल्टा जलप्रपात

चित्र-6: जादुई पानी

बन गए हों।

दैनिक जीवन में विज्ञान

इसी बीच, हम अन्य विषयों की ओर बढ़ गए थे। हमने पत्तियाँ, बीज, फूल, माचिस की डिब्बियों में रखे गए जुगनू एकत्रित किए, और एक बार एक नन्हीं छिपकली को एक काँच के गिलास में बन्द कर लिया। एक बच्चा ऐसे बीज ले आया जो 'हैलीकॉप्टर' कहलाते थे, और उसने मुझे दिखाया कि एक मुट्ठी भर बीजों को हवा में उछालने और फिर हैलीकॉप्टर की तरह उनके धीरे-धीरे नीचे आने का दृश्य कितना रोमांचक होता है। एक दूसरा बच्चा एक सूडकटी (जिसका तमिल में शाब्दिक अर्थ 'गरम बीज' होता है) नाम का चमकदार बीज ले आया जो फर्श पर घिसने पर वाकई में बहुत गर्म हो जाता है। सुधर्मा (उम्र-8 साल) ने मुझे दिखाया कि एक खास पौधे के तने से एक पत्ती तोड़कर, पत्ती और तने के बीच रिसने वाले रस पर फूँक मार कर कैसे एक बड़ा बुलबुला बनाया जाता है।

बच्चों के नज़रिए और विज्ञान

स्नातकोत्तर पढ़ाई और शोध कार्य के कठिन परिश्रम से गुज़र चुके होने के कारण, मुझे उम्मीद नहीं थी कि स्कूली बच्चों के पास मुझे सिखाने के लिए कुछ होगा। मैं यह धारणा लेकर आया था कि मैं विज्ञान पढ़ाने के ढंग में शोध करने के कुछ पहलुओं का समावेश करने का प्रयास करूँगा। पर यह देखकर कि वे अनायास असामान्य क्रियाकलापों से सामना होने पर उनकी छानबीन करने में समर्थ थे, मेरी सारी धारणाएँ उलट-पलट और ऊपर-नीचे हो गईं। अब पीछे मुड़कर देखता हूँ तो महसूस होता है कि यह सिर्फ सांयोगिक बात नहीं थी कि ऐसे अनेक ससम्मान सेवामुक्त प्रोफेसर, जिनके सुन्दर कार्य के कारण मैं उनका प्रशंसक रहा हूँ, में शोध करने के प्रति एक 'बच्चों जैसा' नटखट खेलप्रिय दृष्टिकोण दिखाई देता है।

शायद बच्चे अहंकार-शून्य सहज वैज्ञानिक होते हैं। हालाँकि वे अपनी हासिल की गई जानकारियों को वैज्ञानिक शब्दावली में नहीं बता सकते, पर तब भी उनमें अच्छा शोध-कार्य करने के लिए आवश्यक अनेक गुण होते हैं। वे पार्श्विक तरीके से (laterally) सोच सकते हैं (किसी समस्या को अनेक, अलग-अलग और रचनात्मक तरीकों से समझना व हल करने की कोशिश करना) और तथ्यों के बीच सम्बन्ध खोज सकते हैं, वे धैर्यवान और लगनशील होते हैं, वे न तो असफलता से हताश होते हैं और न ही उससे डरते हैं, वे चीज़ों को करते हुए भी सोचने का काम जारी रख सकते हैं और अगला तर्कसंगत कदम उठा सकते हैं, वे तरकीबें भिड़ा सकते हैं, और वे पूरी तरह सचेत होकर चीज़ों को उसी तरह देख सकते हैं जैसी वे होती हैं और मानो वे उनके बारे में सब कुछ जानते हों। उनके

मन में ज्ञान के खण्डों में बँटी हुई धारणा नहीं होती, जिसके कारण वे विज्ञान और कविता तक का एकीकरण कर सकते हैं, जैसा कि पवन कुमार ने किया।

कभी-कभी बच्चे लगभग स्वतंत्र रूप से पेचीदा वैज्ञानिक परिघटनाओं का पता करते हैं, और ऐसा कभी-कभी संयोग से भी हो जाता है। इस कारण मैं सोचता हूँ कि क्या विज्ञान भी कला की तरह सीखना चाहिए जहाँ बच्चों से कुछ नया करने की अपेक्षा की जाती है, लेकिन यह ज़रूरी नहीं है कि 'कुछ नया' हर बार एक खोज हो। यह भले ही एक नई समझ या नई व्याख्या हो, नया अवलोकन या किसी परिघटना को दूसरे कारकों से जोड़कर उसे समझने का अलग-सा नज़रिया हो।

अब मुझे अपनी मूल आधार-मान्यता पर ही सन्देह होता है। हो सकता है कि विज्ञान के शिक्षण का विज्ञान करने की वास्तविक प्रक्रिया (अर्थात् शोध करना) के साथ कृत्रिम रूप से तालमेल बनाने की कोई ज़रूरत ही न हो। एक तरह से, बच्चों में पहले से ही एक नैसर्गिक वैज्ञानिकता होती है, और उसे न पहचान पाना और न स्वीकार कर पाना वास्तव में वयस्क लोगों की समस्या होती है। दरअसल, उनके कभी-कभी संयोगवश और कभी जानबूझ-कर किए गए छानबीन के कार्य सीखने के नए अवसर उपलब्ध कराते हैं। हमें बच्चों और उनकी वैज्ञानिक क्षमताओं को तुच्छ समझते हुए उनके प्रति अपने कृपा करने वाले रवैए को छोड़ने की ज़रूरत है, और इसकी बजाय उन्हें संजीदगी से लेने और उनके खुलेपन को सराह सकने के लिए खुद अपने मन को खुला रखने की ज़रूरत है। विज्ञान की कक्षा में शिक्षकों तथा बच्चों के बीच एक खरा संवाद, सीखने को वैज्ञानिक चेतना के प्रति अधिक सच्चा और सभी के लिए अधिक सार्थक बना सकता है।

चुनौतियाँ और आशा

शिक्षकों के ऊपर दिए गए पाठ्यक्रम को निर्धारित समय में पूरा करने का जो ज़बरदस्त दबाव होता है, उसका मुझे अहसास है। ऊपर से, शहरी भारतीय समाज पढ़ाने के व्यवसाय को व्यावसायिक असफलता (अन्य किसी काम के लायक न होने) का संकेत मानते हुए, उसे नीची नज़र से देखता है। स्कूल के शिक्षकों को लगातार सीखते रहने का वातावरण मिलना दुर्लभ होता है क्योंकि उनके पेशेवर विकास और बौद्धिक विकास के अवसर बहुत ही कम होते हैं।

यह बात सभी मानते हैं कि विज्ञान की स्कूली शिक्षा में खामियाँ हैं। पारम्परिक दृष्टिकोण विज्ञान को पढ़ाई के ऐसे विषय के रूप में देखता है जो ठोस तथ्यों पर आधारित होता है, और इन तथ्यों का परीक्षण करने या उनका उपयोग करने की बात तो छोड़िए, उसमें यह खोजने की भी

कोई सम्भावना नहीं होती कि पहले-पहल इन तथ्यों को किस तरह जाना गया। विज्ञान की कक्षाओं में वैज्ञानिक पद्धति एक अनाथ की तरह छोड़ दी गई धारणा होती है। यहाँ तक कि गतिविधि-आधारित विज्ञान भी एक चुनौती होती है क्योंकि उसमें इन गतिविधियों को लिखित परीक्षाओं में इस्तेमाल की जाने वाली विज्ञान की भाषा से निरन्तर जोड़ते रहने की ज़रूरत होती है।

ऐसी कठिन मौजूदा परिस्थिति में, सम्भव है कि बच्चे स्वयं ही हमें इससे बाहर निकलने का मार्ग ढूँढ़ने में मदद कर सकें, बशर्ते कि हम उनकी बातों पर ध्यान देने को तैयार हों।

मैं विद्या वनम् के अपने सहकर्मियों तथा वहाँ के बच्चों को उनके प्रेम के लिए, और जो उन्होंने मुझे सिखाया है, उस सब के लिए धन्यवाद देता हूँ।

अनीश मोकाशी: आई.आई.एस.सी., बेंगलूरु में भौतिकी के (स्नातक शिक्षा कार्यक्रम में) शिक्षक हैं। उनसे anish@physics.iisc.ernet.in पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवादः सत्येन्द्र त्रिपाठी: विज्ञान, टेक्नोलॉजी और दर्शनशास्त्र की पढ़ाई की है। कुछ समय पत्रकारिता के बाद अब गाज़ियाबाद में रहते हुए स्वतंत्र रूप से अनुवाद कार्य कर रहे हैं।

सन्दर्भों की सम्पूर्ण सूची के लिए आप लेखक से उपरोक्त ई-मेल पर सम्पर्क कर सकते हैं।

♦♦♦♦♦

शिक्षकों की कलम से

विगत अंक से हमने एक नया कॉलम शुरू किया है जिसके माध्यम से शिक्षक एवं शिक्षक प्रशिक्षक अपने अनुभवों को साझा कर सकें। इस बार तीन अनुभव प्रस्तुत हैं। इन पर अपनी राय दीजिए। साथ ही, आपसे एक छोटी-सी अपेक्षा होगी कि आप अपने अनुभवों को भी हमारे पास ज़रूर भेजिए।

1. सात पूँछ का चूहा..... रवि कान्त
2. नक्शों पर नज़रिया..... कमलेश उप्रेती
3. पत्तियों पर कार्यशाला..... अलका तिवारी

सात पूँछ का चूहा

रवि कान्त

शिक्षकों के साथ काम करते हुए कई बार राष्ट्रीय शैक्षिक एवं अनुसन्धान परिषद (NCERT) द्वारा विकसित एवं प्रकाशित कक्षा-1 की रिमझिम से गुज़रना हुआ। उसकी खूबियों ने हर बार मन को मोहा। अच्छे बड़े आकार के दो-दो पन्नों में इस कोने से उस कोने तक आराम से पसरी तस्वीरें, जिनके साथ सुकून से बतियाने का मन करता है। ऐसी कविताएँ जिन्हें कोई ठीक से सुना दे या हावभाव से करवा दे तो उन्हें भूलना नामुमकिन हो जाता है। कहानियों के साथ दी गई तस्वीरें ऐसी कि जिन्हें देखते ही पूरी कहानी मन के आकाश में झिलमिलाने लगती है।

फिर कविताएँ तो इस किताब में कदम-कदम पर टकरा जाती हैं। और कविताएँ भी कैसी, कभी उछलती-कूदती पकौड़ी की तो कभी आसमान छूते झूले की, कभी नटखट चूहों की टोली की तो कभी फरफराती पतंगों

की। कहानियाँ भी इसमें कुछ कम नहीं, उनके पात्र ऐसे जिनमें बच्चों का मन रमे, और सिर्फ पात्र ही नहीं घटनाक्रम इतने रोचक कि उन्हें बार-बार सुनने को जी चाहे। अभ्यास भी अभ्यास कम, कुछ सोचने, कुछ करने के रोचक काम ज़्यादा नज़र आते हैं। लेकिन जब पूरी किताब से गुज़र कर आखिर तक पहुँचता हूँ, 'सात पूँछ का चूहा' कहानी मन में अटक-सी जाती है। हर बार एक अनसुलझा-सा सवाल उठता है कि आखिर इस कहानी को पाठ्यपुस्तक में लेने की वजह क्या हो सकती है, पर इसका कोई ठीक-सा जवाब सूझ न पाता।

रामनरेश त्रिपाठी की यह कहानी कुछ इस तरह है कि एक सतपूँछी चूहा है, बाकी सभी चूहे एकपूँछी हैं। एकपूँछी चूहों का समूह सतपूँछी चूहे का मज़ाक उड़ाता है। सीधे-सीधे कोई कुछ नहीं कहता लेकिन सतपूँछी चूहा बाकी चूहों के व्यवहार से यह अच्छी तरह समझ जाता है कि उन्हें उसकी पूँछों से ऐतराज़ है। ऐसे में सतपूँछी चूहा उस समूह में शामिल होने के लिए हर बार अपनी एक-एक पूँछ कटवा कर आता है। लेकिन उसका मज़ाक उड़ाया जाना जारी रहता है। यहाँ तक कि जब सतपूँछी चूहे के पास एक पूँछ बचती है तब भी, और जब एक भी पूँछ नहीं बचती है तब भी। अपनी सभी पूँछें कटवा कर भी सतपूँछी चूहा, एकपूँछी चूहों के समूह में खुद को शामिल नहीं करवा पाता यानी उसकी दशा फिर वही की वही रह जाती है।

कहानी पर नाटक

इस अबूझी कहानी को समझने का अहम सुराग तब मिला जब एक प्रशिक्षण में कुछ शिक्षिकाओं ने इस पर नाटक करने का काम चुना। नाट्य-रूपान्तर करते समय उन्होंने कहानी में दो बदलाव किए। पहला नाई की जगह चूहे की माँ को रखा और बाकी चूहों के समूह को खेल के घण्टे में सामूहिक खेल खेलते दिखाया। खेल में शामिल चूहों के उत्साह, सतपूँछी चूहे द्वारा खेल में शामिल किए जाने की गुज़ारिश, समूह द्वारा उसे खेल से बाहर रखने व मज़ाक उड़ाने की घटना और सतपूँछी चूहे के रूआँसेपन के जीवन्त अभिनय ने मेरे सामने तुरन्त यह साफ कर दिया कि हो-न-हो इस कहानी का ताल्लुक समाजीकरण व सामाजिक बहिष्करण से है। हालाँकि यह बात कहानी में भी है लेकिन जितनी गहराई और सीधे तौर पर मैं इसे नाटक के दृश्यों से समझ पाया वैसा शायद कहानी को पढ़ते हुए नहीं समझ पाया था। इसके साथ ही एक नया सवाल भी खड़ा हो गया कि क्या यह कहानी समाजीकरण या समावेशन का कोई तरीका भी सुझाती है? क्या वह तरीका ठीक है?

नाटक करने के बाद हमेशा की तरह अध्यापिकाएँ इस पर बातचीत के लिए तैयार थीं। मेरे दिमाग में भी

बातचीत की शुरुआत का सवाल बिलकुल साफ हो चुका था – यह कहानी तो सामाजिक बहिष्करण के औज़ार के ज़रिए दबाव डालकर सामाजिक एकरूपता को स्वीकार करने की बात करती नज़र आती है। थोड़ी देर तक समूह में सन्नाटा छाया रहा। शायद कुछ के मन में यह सवाल रहा होगा कि पाठ्यपुस्तक में ऐसा कैसे हो सकता है। कैसे हमारे जैसे सांस्कृतिक बहुलता वाले देश में ऐसी कहानियों को पाठ्यपुस्तक में लिया जा सकता है। एक-दो अध्यापिकाओं ने मेरी बात पर सहमति जताई। लेकिन एक अध्यापिका ने ध्यान दिलाया कि सामाजिक एकरूपता को स्वीकार करने का दबाव बनाने की बात तो तब कही जा सकती थी जब कहानी के अन्त में चूहे के पास एक ही पूँछ बचती। इस कहानी अन्त में तो चूहा बगैर पूँछ का हो जाता है, यानी उसके पास एक भी पूँछ नहीं बचती। तो वह अन्त में बाकी चूहों जैसा कहाँ हुआ। और अन्त में उसे चिढ़ाया भी 'बिना पूँछ का चूहा' के नाम से ही जाता है। यह बात ठीक थी और मेरा शुरुआती सवाल ढेर हो चुका था।

पूँछ - एक सामाजिक प्रतीक

तो फिर बहुत वक्त से खदबदाते सवाल को समूह में रखा कि इस कहानी को कैसे समझें। मैंने पूछा कि "क्या यह कहानी चूहों की है?" इस पर कुछ अध्यापिकाओं ने कहा कि यह कहानी इन्सानों की है लेकिन इसमें पात्र की जगह चूहे दर्शाए गए हैं। यह कहानी इस पाठ्यपुस्तक में क्यों शामिल की गई होगी, इस सवाल पर किसी ने कहा कि बच्चों को स्कूल में अपने आपको समायोजित करने में कई बार कई वजहों से दिक्कत आती है, शायद उसकी वजह से यह कहानी चुनी गई हो। शायद यह सोचा गया हो कि इस कहानी की मदद से बच्चे समूह में

समायोजन का तरीका सीखें। फिर यह सवाल उठा कि कहानी के चूहे अगर बच्चे हैं तो चूहे की पूँछ को कैसे समझें। क्योंकि पूरी कहानी टिकी ही चूहे की पूँछ पर है। कहानी का नायक सतपूँछी चूहा है, उसकी पहचान सात पूँछों से है और पूरी कहानी में उसी की पूँछें कटती रहती हैं।

यहाँ तक आते-आते मुझे सूझा कि यह पूँछ असल में पूँछ न होकर एक स्तर पर व्यक्ति की पहचान का मामला बन जाती है। यानी पूँछ पहचान का प्रतीक है। तुरन्त यह भी याद आया कि जाति की पूँछ तो हमारे देश में पैदाइशी तौर पर सभी के साथ लगी रहती है, और इतनी मज़बूती से लगी रहती है कि आप धर्म बदल लो तो भी वह उखड़ने का नाम नहीं लेती। एक बार यह बात समझ में आते ही इस कहानी का अर्थ कुछ-कुछ समझ में आने लगा।

समूह में बातचीत जारी रखने पर अध्यापिकाओं ने अपनी बात को समझाने के लिए कुछ उदाहरण भी दिए, जैसे स्कूल में अगर कुछ बच्चों के नाक-नक्श या रंग-रूप अलग तरह के हों, या वे दूसरी भाषा बोलते हों, या भाषा बोलने का उनका लहज़ा व उच्चारण अलग हो, या उनकी जाति या धर्म अलग हों, या उनका खान-पान अलग तरह का हो, या विशेष योग्यता वाला बच्चा हो और बाकी दूसरे काफी सारे बच्चे एक ही समुदाय, जाति, भाषा, क्षेत्र आदि के हों तो कई बार इन बच्चों का मज़ाक उड़ाया जाता है और अपमानित भी किया जाता है।

पूँछ को पहचान के प्रतीक के तौर पर चिन्हित करने के बाद दूसरी अध्यापिका ने कहा कि कहानी तो यह कहती लगती है कि अगर आप सामाजिक दबाव में अपनी पहचानों को मिटाते जाएँगे तो आप पूरी तरह से पहचान-विहीन हो जाएँगे, इसके बावजूद ज़रूरी नहीं है कि आपको पहले से बना समुदाय अपने में शामिल कर ले। तो आपके पास रास्ता यही है कि अपनी पहचान को बचाए रखिए और जैसे हैं वैसे ही बने रहिए। इस पर यह सवाल उठाया गया कि कहानी के अन्त में तो सतपूँछी चूहा पूँछकटा हो गया यानी वह जैसा था वैसा तो नहीं बचा, तो क्या यह कहानी अच्छी या बुरी जैसी भी पहचान हो उसे बचाए रखने की बात करती है? यहाँ आकर बातचीत रुक गई कि बहुत सारी पहचानों के सन्दर्भ में इस कहानी को कैसे समझें। लेकिन यह बात तो समूह के सामने साफ हो गई कि इस कहानी का एक मकसद इस बात को सम्प्रेषित करना है कि सामाजिक दबाव में अपनी पहचान को कटवाना या मिटाना कोई ठीक बात नहीं है।

सामाजिक बहिष्करण या समावेशन

फिर देखा गया तो पाया कि अब तक जितने उदाहरण आए, उनमें दो तरह का बहिष्करण नज़र आ रहा

था। पहला, शारीरिक बनावट, रंग-रूप या किसी क्षमता या अंग की कमी के आधार पर और दूसरा, सामाजिक आधार पर। फिर सवाल यह उठाया गया कि यह कहानी शारीरिक बनावट के आधार पर बहिष्करण की बात कर रही है या सामाजिक आधार पर या क्या यह दोनों ही आधारों पर बहिष्करण की बात कर रही है। यह सवाल भी अनसुलझा ही रहा।

प्रशिक्षण में इतनी ही बात होकर रह गई। कुछ पुराने सवाल सुलझे तो कुछ नए सवाल खड़े हो गए, लेकिन यह बातचीत और कहानी मेरे मन में उमड़ती-घुमड़ती रही। बातचीत याद रह जाने की एक वजह तो यह थी कि बहुत दिनों से सुगबुगा रहे सवाल के जवाब की कुछ राह नज़र आने लगी थी। कहानी के नाट्य रूपान्तरण और उस पर हुई बातचीत ने मेरे सामने इस बात को एक बार फिर से शीशे की तरह साफ कर दिया। और यह भी कि शिक्षा में कार्यरत कोई भी सचेतन समूह जब किसी कहानी को नाट्य रूपान्तरण के लिए लेता है तो उसमें फेरबदल की काफी गुंजाइश रहती है

और यह गुंजाइश कई बार कहानी को ज़्यादा सार्थक सन्दर्भों से जोड़कर उसके अर्थ व असर को गहरा कर देती है।

बाद में जब दोबारा पूरी बातचीत पर लिखा व सोचा तो यह समझ आया कि चूँकि पूँछ भी एक शारीरिक अंग है तो एक स्तर पर तो यह कहानी शारीरिक आधार पर बहिष्करण की बात कर रही है और अगर हम पूँछ को पहचान के तौर पर लेते हैं तो दूसरे स्तर पर यह सामाजिक-सांस्कृतिक आधार पर बहिष्करण की बात कर रही है। यानी यह कहानी बहुपरती है, इसमें कम-से-कम दो परतें तो हैं ही। कहानी के ज़रिए बच्चों की रोज़मर्रा की ज़िन्दगी के अहम मुद्दे को उठाने व उसके बहुपरती होने की बात को पहचानने के लिए पाठ्यपुस्तक निर्माता समिति को दाद देने को जी चाहा। लेकिन खुल कर दाद देने से पहले सोचा कि क्यों न इस कहानी को पाठ्यपुस्तक में शामिल करने वाली समिति की मंशा को ठीक से समझने के लिए कहानी के बाद दिए गए अभ्यासों को देखा जाए। अगर कहानी चुनने वालों ने इसके बहुपरती अर्थ व उसकी उपयोगिता को पहचान कर कक्षा-1 में लिया है तो इसकी झलक अभ्यास में भी नज़र आनी चाहिए।

अभ्यास प्रश्नों के रास्ते पड़ताल

अगर यह कहानी पूँछ को सामाजिक पहचान के प्रतीक के तौर पर लेती है तो उसका कोई रास्ता कहानी में नहीं सूझता और यहीं पर अभ्यास में शामिल किए गए कामों के ज़रिए पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति की कल्पनाशीलता व गहरी सूझ कहानी के वितान को फैला देती है। समिति अपनी नीरसता के लिए बदनाम पाठ्यपुस्तकीय अभ्यास में ऐसे कामों को शामिल करती है कि वे सिर्फ अभ्यास न रह कर इस कहानी-अर्थ को गहराई व विस्तार देने वाले रचनात्मक व रोचक कर्म में तब्दील हो जाते हैं।

अभ्यास में तीन सवाल लिए गए हैं लेकिन उन्हें दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है। पहले, सवालों को देखें:

1. चूहे ने बेकार ही सातों पूँछें कटवाईं, सात पूँछों से वह कितना सारा काम कर सकता था (फिर इसमें हाथी की चार सूँडों व बच्चे के चार हाथों से किए जा सकने वाले कामों के बारे में पूछा गया है)।
2. पूँछकटे चूहे के चित्र में रंगीन कागज़ चिपकाओ।
3. बिना पूँछ के वह क्या नहीं कर पाएगा?

यानी कहानी जिस जगह लाकर पाठक को छोड़ देती है, अभ्यास उससे आगे की राह दिखाकर कहानी व अभ्यास को मिलाकर एक मुकम्मल पाठ गढ़ देते हैं। पहले व तीसरे सवाल एक-दूसरे से एकदम उलट हैं लेकिन दोनों ही पूँछों के होने की अहमियत और उनके न होने की मुश्किलों को रेखांकित

करते हैं। दोनों सवालों में पूँछ की अहमियत को दर्शाने के लिए उसके उपयोग के बारे में पूछा गया है। पहले अभ्यास का पहला ही वाक्य यह साफ कर देता है कि यह कहानी इस पाठ्यपुस्तक में संयोग से नहीं बल्कि सोच समझकर ली गई है (वैसे तो कोई भी कहानी पाठ्यपुस्तक में संयोग से नहीं आती)। उसमें मुनादी कर दी गई है कि फालतू ही चूहे ने सातों पूँछें कटवाईं और यह मुनादी अभ्यास के आखिर तक बरकरार रहती है। तीन में से दो सवाल पूँछ कटवाने के फालतूपन के पक्ष में तर्क की बुनियाद रखते हैं और एक सवाल दोबारा पूँछ गढ़ने की तरफदारी करता है।

पहले और तीसरे सवाल में एक तरफ तो यह कहा गया है कि अगर एक पूँछ कुछ कामों को कर सकती है तो ज़्यादा पूँछों से ज़्यादा काम किए जा सकते हैं। इसी तरह पूँछ न रहने पर क्या-क्या काम करने की क्षमताएँ कम हो जाएँगी इसकी तरफ भी ध्यान दिलाया गया है। यहाँ पर जानबूझकर इस सवाल को छोड़ा गया है कि ज़्यादा पूँछों से क्या-क्या परेशानियाँ बढ़ जाएँगी क्योंकि अब मामला पूँछ का रहा ही नहीं, वह तो पहचान का हो गया है। और यहाँ पर इकहरी पहचान की बजाय बहुरंगी पहचान की तरफदारी की जा रही है। इन सवालों को ज़रा इस तरह से पूछकर देखिए तो अर्थ ज़्यादा साफ हो जाएगा। जैसे, कौन-सा व्यक्ति ज़्यादा बेहतर रहेगा – एक भाषी या बहुभाषी, अपने ही खानपान को कट्टरता से सही मानने वाला और इस आधार पर दूसरों के साथ भेदभाव करने वाला या सभी तरह के खान-पानों को स्वीकार करने वाला व उसमें रस लेने वाला आदि।

दूसरे सवाल में पूँछकटे चूहे के चित्र में रंग-बिरंगे कागज़ के टुकड़े चिपकाने के लिए कहा गया है। पाठ्यपुस्तक में बने चित्र में पूँछ की जगह खाली है। वहाँ पर यह सम्भावना है कि बच्चे चूहे की पूँछ भी बनाएँ

और वह भी रंग-बिरंगी और यह भी कि वे चूहे की एक से ज़्यादा पूँछें बनाएँ। मुझे हैरानी सिर्फ इस बात की है कि इसमें एकदम साफ तौर से यह क्यों नहीं कहा गया, "तुम्हें कितनी पूँछों वाला चूहा पसन्द है, रंगीन कागज़ के टुकड़ों से चूहे की उतनी पूँछें बनाओ।" अगर कहानी के केन्द्रीय मुद्दे, पहचान के सवाल को ध्यान में रखा जाए तो यह सवाल काफी अहमियत रखता है। यहाँ पर पूँछें बनाना प्रतीकात्मक तौर पर अपने लिए पहचान को गढ़ना है और इस पहचान में पहले से मिली पहचान तथा स्कूल व कक्षा में पाई जाने वाली अलग-अलग पहचानों का हिस्सा हो भी सकता है और नहीं भी। पूँछ बनवाने वाले सवाल की अहमियत इस वजह से भी है कि यह पहले से बनी बनाई पहचान को आँख बन्द करके जारी रखने की बजाय सामाजिक-सांस्कृतिक बहुल पहचान के पक्ष में तर्क गढ़ने से आगे बढ़कर बच्चे को खुद अपनी पहचान के घटक चुनने का व उसकी मदद से अपनी पहचान को गढ़ने का मौका देता है।

***

इस कहानी पर अपने कुछ अनसुलझे सवालों को सुलझाने की कोशिश पर इतनी बात करने के बाद मेरे मन में एक सवाल अभी भी बचा हुआ है कि यह कहानी जितना कहती है कहीं मैं इसमें उससे ज़्यादा देखने, पढ़ने व समझने की कोशिश तो नहीं कर रहा हूँ या फिर जितना मैंने देखा, पढ़ा व समझा, यह कहानी उससे भी कहीं ज़्यादा गहरी व अर्थवान है?

रवि कान्तः शैक्षिक सलाहकार के तौर पर विभिन्न संस्थाओं, अध्यापकों के साथ काम। शिक्षण सामग्री, पाठ्यचर्या व पाठ्यपुस्तकों और प्रशिक्षण संदर्शिकाओं आदि का निर्माण, शैक्षिक शोध और अनुवाद। गणित शिक्षण में खास रुचि। जयपुर में निवास।
सभी चित्र एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा विकसित पाठ्यपुस्तक रिमझिम, कक्षा-1 से साभार।

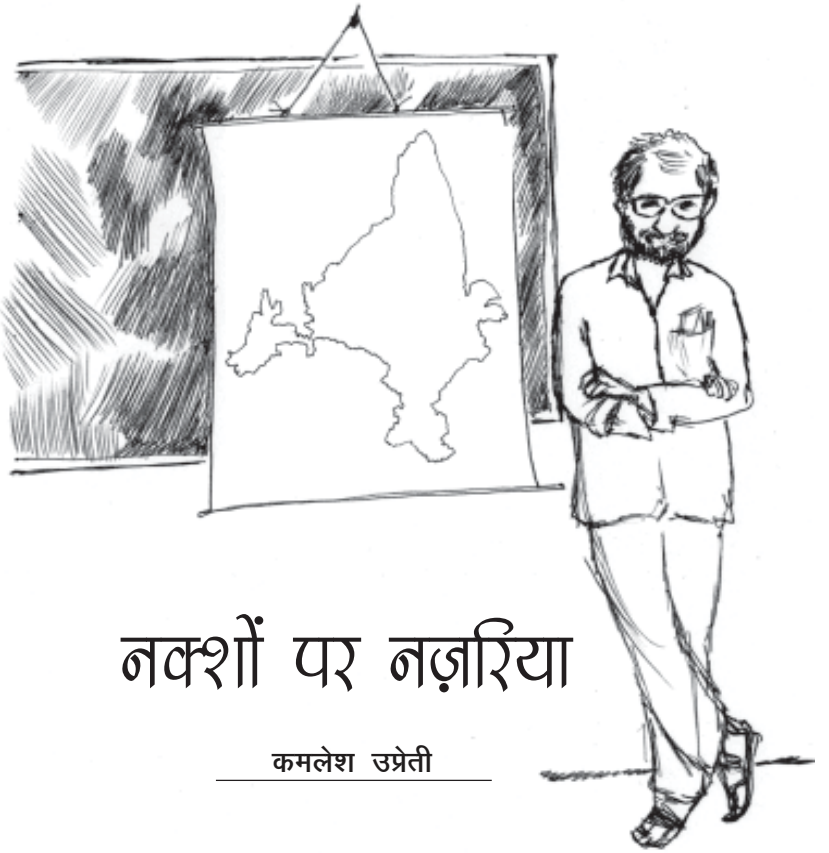

नक्शों पर नज़रिया

कमलेश उप्रेती

संदर्भ के अंक-81 में मैंने मानचित्रों पर एक लेख पढ़ा था जिसमें कई मूलभूत तथ्य दिए गए थे और मानचित्रों के प्रति किस प्रकार हमारा एक परम्परागत रूढ़ दृष्टिकोण रहता है उस पर बड़ी रोचक बातों का ज़िक्र था।* मैंने इसे जाँचने का मन बनाया। मैं शिक्षण के द्विवर्षीय सेवापूर्व प्रशिक्षण में स्रोतदल के रूप में भाग ले रहा था जिसका पाठ्यक्रम अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के सहयोग से बनाया गया था। फलस्वरूप कुछ नई व रोचक शिक्षण विधियाँ अपनाई जा रही थीं। प्रशिक्षुओं के सम्मुख कोई समस्या रखी जाती थी, फिर उस पर परिचर्चा द्वारा विभिन्न समूहों से या व्यक्तिगत विचार लिए जाते थे। प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर समस्या या विषय की गहराई में उतरने का प्रयास किया जाता था। यहाँ एक सर्वमान्य व सटीक हल

** यमुना सन्नी का लेख 'मानचित्र और उनकी प्रेतात्माएँ' (अंक-81)।*

निकालने पर ज़ोर देने की बजाए विचार-विमर्श द्वारा तर्कपूर्ण ढंग से समाधान करने की प्रवृति के विकास को महत्व देना अधिक होता था। अध्यापकों और प्रशिक्षुओं, दोनों के लिए निरन्तर नए व रोचक विषय चर्चा के लिए लाने की चुनौती रहती।

इसी क्रम में एक दिन मैंने मानचित्रों पर हमारी व्यापक सोच पर बहस करवाने की सोची। इसके लिए सबसे पहले मैंने, कक्षा हॉल में जब कोई उपस्थित नहीं था, चार्ट पेपर पर हाथ से बनाया भारत का मानचित्र बोर्ड पर टाँग दिया जो कि प्रथम दृष्ट्या उल्टा था। मतलब कश्मीर नीचे और कन्याकुमारी ऊपर जबकि दिशाएँ भूगोल के हिसाब से ही दर्शायी गई थीं। मैंने इसे जानबूझकर ही ऐसा बनाया था।

अब मैं चुपचाप बैठकर लोगों की प्रतिक्रियाएँ नोट करने लगा ताकि बाद में उन पर चर्चा की जा सके। इस प्रक्रिया में हमारा मानचित्रों के प्रति एक रूढ़ व पूर्वाग्रहों से भरपूर दृष्टिकोण सामने आया। ये प्रतिक्रियाएँ हमारे मस्तिष्क पर बचपन से बनी उन स्थाई छवियों को प्रदर्शित कर रही थीं जो स्कूली पाठ्यपुस्तकों ने बड़ी गहराई से निर्मित कर दी थीं। ये छवियाँ इतनी गहरी थीं कि लोग किसी दूसरे परिप्रेक्ष्य और नज़रिए से देखना ही नहीं चाहते थे। अध्यापकों की भी ऐसी ही प्रतिक्रियाएँ थीं। इन प्रतिक्रियाओं पर चर्चा के दौरान मानचित्रों की जो छवियाँ अधिक प्रभावशाली रहीं उन्हें मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ और उनका निर्माण कैसे होता है इस पर भी अपनी राय देना चाहूँगा।

उल्टा-पुल्टा

एक प्रशिक्षु ने कक्षा में प्रवेश करते ही बोर्ड पर टंगा मानचित्र देखा। उसने चुपचाप उसे सीधा कर दिया। उसके बाहर जाते ही मैंने मानचित्र पूर्ववत् टाँग दिया। जब कक्षा भरने लगी तब किसी और ने उसे सीधा तो नहीं किया मगर उस पर बातचीत करने लगे कि इसे उल्टा क्यों और किसने लगाया होगा।

ज़ाहिर था कि प्रशिक्षुओं के मन में मानचित्र की एक परम्परागत छवि थी जिसमें उत्तर दिशा सदैव ऊपर और दक्षिण सदैव नीचे रहती है। भारत के मानचित्र में यह छवि अधिक गहरी है क्योंकि यह हमारा सबसे परिचित मानचित्र है। यह छवि देशगीत की इन पंक्तियों से भी लोकप्रिय हुई है 'ऊपर खड़ा हिमालय आकाश चूमता है, नीचे चरण तले नित सिन्धु झूमता है।'

मानचित्र की यह छवि भौगोलिक तथ्यों के साथ गड्डमड्ड होकर कई विरोधाभास रचती है जैसे बचपन में मैं हैरान हो जाता था कि चम्बल और सोन नदियाँ नीचे से ऊपर को कैसे बहती होंगी। या अमेरिका और अंटार्कटिका पर लोग सिर के बल खड़े होकर कैसे चलते होंगे। ऊपर-

नीचे की इस रूढ़ छवि को तोड़ना बहुत कठिन होता है। मानचित्र किसी भू-भाग का एक क्षैतिज सतह पर चित्रण है जिसमें ऊपर-नीचे की दिशाएँ पृथ्वी की त्रिज्य रेखा में क्रमशः आकाश और धरती के केन्द्र की ओर होती हैं। मगर हमें बचपन से ही मानचित्रों को लटकाई अवस्था में देखने की आदत होती है जिससे सापेक्ष धारणा बनाने में समस्या आती है।

मानचित्र में दिशाओं को सही आँकना ज़रूरी है, क्योंकि कश्मीर को ऊपर रखें या नीचे उसकी दिशा भारत के उत्तर में ही रहेगी। परम्परागत रूप से भारत के मानचित्र में बाएँ हाथ की ओर गुजरात, दाएँ हाथ की ओर असम-नागालेंड एवं ऊपर-नीचे क्रमशः कश्मीर और कन्याकुमारी चित्रित होते हैं।

मगर यह परिदृश्य बदल जाता है जब कोई प्रेक्षक सेटेलाइट कश्मीर की ओर से भारत में प्रवेश करते हुए उसके भू-भाग को देखता है। अब उसकी देखी तस्वीर में बाएँ हाथ की ओर असम-नागालेंड तो दाएँ पर गुजरात व ऊपर कन्याकुमारी तो नीचे कश्मीर ही तो होगा। ऐसे ही हम प्रेक्षक को गुजरात और फिर असम की ओर से प्रवेश करा के भारत भूमि का प्रेक्षण कर प्राप्त तस्वीरों का अनुमान लगा सकते हैं। गूगल-अर्थ में विशेष टूल के माध्यम से किसी भू-भाग का किसी भी दिशा से अवलोकन करने

की सुविधा दी हुई है जिससे ऊपर-नीचे की हमारी अवधारणा काफी स्पष्ट हो सकती है।

मानचित्र और राष्ट्रवाद

कई लोगों ने मानचित्र को उल्टा टाँगने को राष्ट्र की अस्मिता से भी जोड़ कर देखा। उनका मानना था कि मानचित्र को सदैव परम्परागत तरीके से दिखाना ही सही है। मेरे विचार से ऐसी धारणा मानचित्र को राष्ट्रध्वज की तरह समझने के फलस्वरूप पैदा हुई होगी जिसमें सदैव केसरिया रंग ऊपर रहता है। यह उल्लेखनीय है कि ध्वज को लम्बवत् फहराया जाता है। जबकि भारत के मानचित्र में उसके किसी भी भू-भाग की सीमा से किसी प्रकार की छेड़छाड़ नहीं की गई थी, उसके बावजूद भूगोल के बारे में बचपन की रूढ़ धारणा के कारण इस प्रकार के विचार बने।

इस धारणा को हाल के दशकों में कुछ राष्ट्रवादी संगठनों द्वारा भारत के मानचित्र को मानवीकृत करके प्रचारित करने से अधिक बल मिला है। इस तस्वीर में भारत माँ के नारी स्वरूप के मुकुट पर हिमालय तो चरणों पर सागर लहरा रहा है। गौरतलब है कि भौगोलिक तथ्यों से इस तस्वीर का कोई मेल नहीं बैठता।

उपरोक्त वर्णित दोनों छवियों की निर्मिति के कारण हमारे विद्यालयों में मानचित्रों की समझ बनाने के अपर्याप्त मौके मिलते हैं और अधिकांश गलत तरीके इस्तेमाल किए जाते हैं। क्षैतिज रखकर मानचित्रों का अध्ययन करने की कहीं कोशिश नहीं होती क्योंकि दीवार पर नक्शा टाँगकर अध्यापक बैठे-बैठे सारी कक्षा को पढ़ा सकता है; जबकि क्षैतिज रखकर तो अध्यापक को झुकना पड़ता है, कक्षा की व्यवस्था गड़बड़ाती है जो किसी विरले अध्यापक को ही गवारा होता है। इस ज़रा-से आलस से एक पूरी पीढ़ी रूढ़िवादी सोच पाल लेती है। त्रिआयामी या उभारदार मानचित्र जो क्षैतिज रखकर देखे जा सकें, सभी बच्चों तक पहुँचने चाहिए। सबसे बढ़कर यह सोच विकसित करने की ज़रूरत है कि हमारे से भिन्न नज़रिया भी हो सकता है और वह भी उतना ही सही हो सकता है जितना कि हमारा। तभी हम एक सहिष्णु समाज बना सकते हैं।

कमलेश उप्रेती: शासकीय प्राथमिक विद्यालय, पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड में शिक्षक। आधुनिक सुविधाओं के बगैर एक सुदूर गाँव में 'वनराजी' नामक हाशियाकृत आदिवासी समुदाय के बच्चों को पढ़ाते हैं।

सभी चित्र: कनक शशि: स्वतंत्र कलाकार के रूप में पिछले एक दशक से बच्चों की किताबों के लिए चित्रांकन कर रही हैं। एकलव्य के डिज़ाइन समूह से सम्बद्ध। भोपाल में निवास।

पत्तियों पर कार्यशाला

अलका तिवारी

राजकीय शिक्षकों के साथ प्रशिक्षण कार्यशालाएँ प्रभावी रूप से आयोजित करना हमेशा से ही चुनौतीपूर्ण रहा है। मुझे शिक्षक साथियों के साथ इस तरह की एक कार्यशाला से जुड़ने का अवसर मिला जिसमें 'पेड़-पौधों के भाग और उनकी पहचान' को लेकर समझ बनाने का प्रयास किया गया। इस कार्यशाला में मेरे अनुभव यह सोचने को प्रेरित करते हैं कि शिक्षकों के साथ अकादमिक मुद्दों पर विमर्श के अवसर सृजित करना सम्भव हैं ताकि वे इन कार्यशालाओं में पूरे उत्साह के साथ भागीदारी करें और स्वयं की समझ में कुछ बढ़ोत्तरी का एहसास लेकर कार्यशाला से उठें। इस कार्यशाला के अनुभव के कुछ अंशों को साझा कर रही हूँ।

पौधों के भागों की पहचान

सत्र की शुरुआत पेड़-पौधों के बारे

शिक्षकों के साथ काम के उद्देश्य

- वनस्पतियों पर बातचीत करते हुए, इस दिशा में एक साझा समझ विकसित करने की कोशिश करना कि कैसे वनस्पतियों के संरचनात्मक विभेद (यानी उनकी बनावट में पाए जाने वाले अन्तर) को वर्गीकरण के आधार के रूप में शामिल किया जा सकता है।
- यह अनुभव देने का प्रयास करना कि कोई एक ही हिस्सा या अंग अलग-अलग वनस्पतियों में कितने तरह के संरचनात्मक विभेदों के साथ अपनी उपस्थिति दर्शाता है।
- यह समझ स्थापित करने का प्रयास करना कि आसपास की वनस्पतियों को संसाधनों के रूप में उपयोग करते हुए शिक्षण को परिवेश से जोड़कर जीवन्त एवं प्रभावी बनाया जा सकता है।
- वनस्पतियों में पाए जाने वाले पैटर्न खोजने के लिए जिज्ञासा और चिन्तन पैदा करना।
- साथ ही यह प्रयास करना कि शिक्षक विज्ञान में अवलोकन से जुड़ी मान्यताओं पर पुनर्विचार कर पाएँ।

में बातचीत से की गई। सहभागियों से चर्चा करते हुए पेड़ व पौधों में नज़र आने वाले अन्तरों को चिन्हित करते हुए कुछ सामान्य पैटर्न पहचानने का प्रयास किया गया। सहभागियों द्वारा बताया गया कि पेड़ व पौधों के तने व जड़ों में तो यह पैटर्न साफ-साफ देख पाते हैं कि पेड़ों में जड़ें व तने ज़्यादा मज़बूत, लम्बे, ज़्यादा शाखित, ज़मीन के अन्दर या ऊपर पाए जाते हैं, जबकि पौधों में इसके विपरीत लक्षण नज़र आते हैं। लेकिन फूल, फल व पत्तियों के सन्दर्भ में इस तरह का कोई तय पैटर्न दिखाई नहीं देता कि कहा जा सके कि कुछ खास तरह की पत्तियाँ व फूल केवल पौधों में ही मिलेंगे या फिर केवल पेड़ों में ही। इसी क्रम में यह बातचीत की गई कि पेड़ व पौधों में किस भाग को जड़, तना या पत्ती के रूप में पहचानें, यह हम कैसे तय कर रहे होते हैं। इस पर सहभागियों ने आम तौर पर पाए जाने वाले लक्षणों के बारे में बताया जैसेः

- **जड़:** भूरे रंग की व ज़मीन के नीचे होती हैं। इसके ऊपर बारीक-बारीक रोम पाए जाते हैं।
- **तना:** शाकीय पौधों में सामान्यतः हरे रंग के और कभी-कभी गहरे भूरे रंग के व सदैव ज़मीन के ऊपर ही पाए जाते हैं।
- **पत्ती:** तने पर उपस्थित, सामान्यतः हरे रंग की संरचनाएँ और कभी-कभी लाल, पीली और जामुनी संरचनाएँ भी।

इन लक्षणों की मदद से, सहभागियों के साथ मूली, आलू, प्याज़, गाजर, शलगम, अदरक, हल्दी जैसे उदाहरण लेकर भी विस्तार से बात की गई। सभी सहभागी गाजर, मूली व आलू को लेकर काफी असमंजस में नज़र आए कि इन्हें जड़ माना जाए या फिर तना। इसी तरह सूखी प्याज़ व हरी प्याज़ का अवलोकन करते हुए यह विमर्श रहा कि इसे जड़, तना, पत्ती में से क्या माना जाए। हरी प्याज़ में हरे हिस्से को समूह ने पत्ती माना पर सूखी प्याज़ पर काफी मतभेद रहा। इसी तरह पालक के गुच्छे से एक पालक का पत्ता तोड़कर देखा तो पत्ती

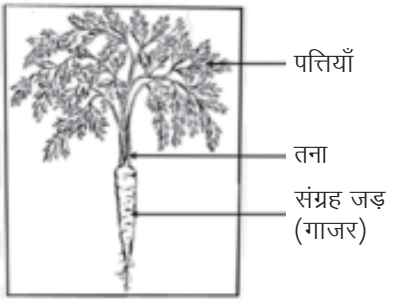

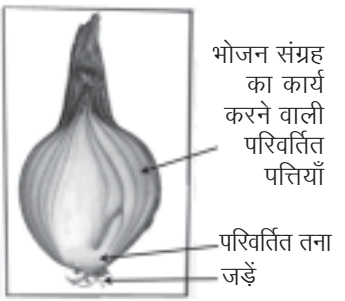

कार्य योजना

शिक्षकों के साथ मेरे काम की कार्य योजना के तौर पर मैंने कुछ विशिष्ट सवाल और चरण निर्धारित किए:

- किसी संरचना को पेड़ या पौधा मानने के लिए हम क्या मापदण्ड चुनते हैं?
- पेड़ व पौधे में विभेद के लिए किन-किन आधारों को चिन्हित किया जा सकता है?
- सामूहिक विमर्श करते हुए यह जानने की कोशिश करना कि क्या पौधे के सभी हिस्से इस तरह के वर्गीकरण का आधार हो सकते हैं?
- जब हम पौधे के किसी खास हिस्से को तना, पत्ती, जड़, फूल या फल के रूप में पहचानते हैं, तब इन भागों के कुछ खास नाम देने के हमारे क्या-क्या मापदण्ड हैं?
- पादप के किसी हिस्से को किसी भाग-विशेष के रूप में हम कैसे पहचान पाते हैं? पौधे के किसी एक भाग को देखकर अन्य भागों के बारे में क्या कोई अनुमान लगाया जा सकता है?

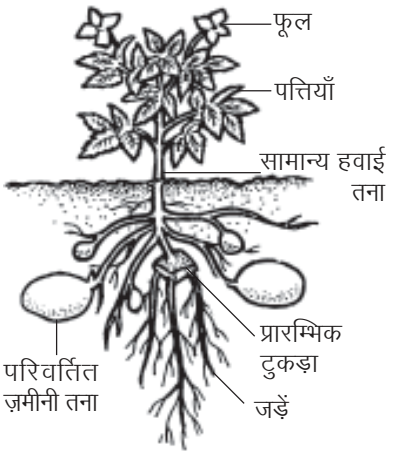

आलू का पौधा

के नीचे वाले हिस्से को तना मानने लगे। पेड़-पौधों के भागों की पहचान के लिए पहले चिन्हित किए सामान्य लक्षणों से तुलना करने पर सहभागियों ने अनुभव किया कि यहाँ तो असमंजस की स्थिति बन गई है। हमने पहले जो कुछ पहचाना था वह अब कुछ और ही लग रहा है।

यहाँ पर मैंने थोड़ा ठहर कर इस असमंजस की स्थिति में सहभागियों के मन में पैदा हो रहे सवालों को हल करने के सूत्र खोजने की अपेक्षा के साथ उन्हें मनीप्लांट, घास, गेंदा आदि पौधे दिए व इन्हें छूकर देखने को कहा। मनीप्लांट को ठीक से छूने पर पाया कि जहाँ-जहाँ से पत्तियाँ निकल रही हैं वहाँ गाँठ-सी महसूस होती है।

इस अनुभव को पर्व और पर्व-सन्धि की उपस्थिति से जोड़ते हुए जड़ से तने की अलग पहचान करवाई गई। अब समूह सहमत था कि जड़ व तने में विभेद के लिए यही प्रमुख आधार है।

पत्तियाँ

इसके बाद पत्तियों व जड़ों की संरचना की पहचान पर चर्चा की गई। इस सत्र के दौरान सबसे पहले यह बातचीत की गई कि पौधे के किसी भाग को पत्ती के रूप में पहचानने के लिए क्या शर्तें आवश्यक प्रतीत होती हैं या ऐसे क्या सामान्य हिस्से हो सकते हैं जिनके बारे में देखकर लगता है कि ये तो किसी भी पत्ती में होने ही चाहिए; इनके बिना तो शायद ही कोई पत्ती, पत्ती कही जा सकती है। इस पर सहभागियों की मदद से पत्ती की संरचना को चित्रित करते हुए सामान्य लक्षणों को चिन्हित किया गया, व सहमति बनाई गई कि सामान्यतया पत्ती में पर्ण-वृन्त (डण्ठल), फलक, कोर, शिराएँ, शिखाग्र आदि भाग पाए जाते हैं। इस पर यह प्रश्न उठा कि क्या ये सभी भाग सभी पत्तियों में दिखाई देते हैं?

इस पर ज़्यादातर सहभागियों की असहमति रही, व कुछ असमंजस की स्थिति में भी रहे। मैंने सुझाव रखा कि क्यों न हम अपने आसपास मिलने वाले पौधों का अवलोकन करें और फिर कुछ साझा समझ बनाने की कोशिश करें। सहभागियों के पाँच उप-समूह बनाए गए और अगला एक घण्टा पेड़-पौधों की पत्तियों का सूक्ष्म अवलोकन करने में गुज़रा। इसके बाद सभी उप-समूहों ने अपने विचार रखे जिनसे ये बातें निकलीं:

- एक विभेद तो पत्ती व इसके भागों की उपस्थिति होने व न होने के आधार पर नज़र आता है। दूसरा अन्तर यदि पत्ती उपस्थित है तो उसकी बनावट के आधार पर दिखाई देता है।
- मनीप्लांट, पालक, आकड़ा, अनार, नींबू, बोगिनविलिया, धतूरा, पपीता आदि को देखते हुए सहभागियों ने अनुभव किया कि पर्ण-वृन्त (डण्ठल) की लम्बाई अलग-अलग है।
- ऐसे ही जेट्रोपा, नींबू, गुड़हल आदि में पत्तियों में अनुपत्र दिखाई देते हैं। जबकि कनेर, अनार, आम, फाइकस आदि में ये नज़र नहीं आते।

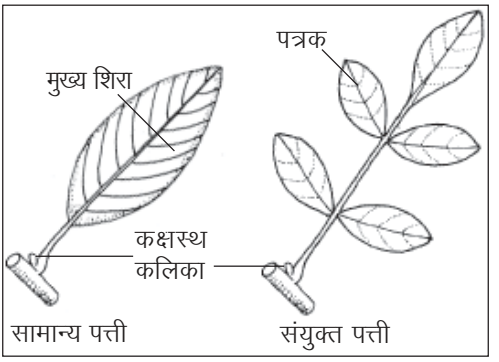

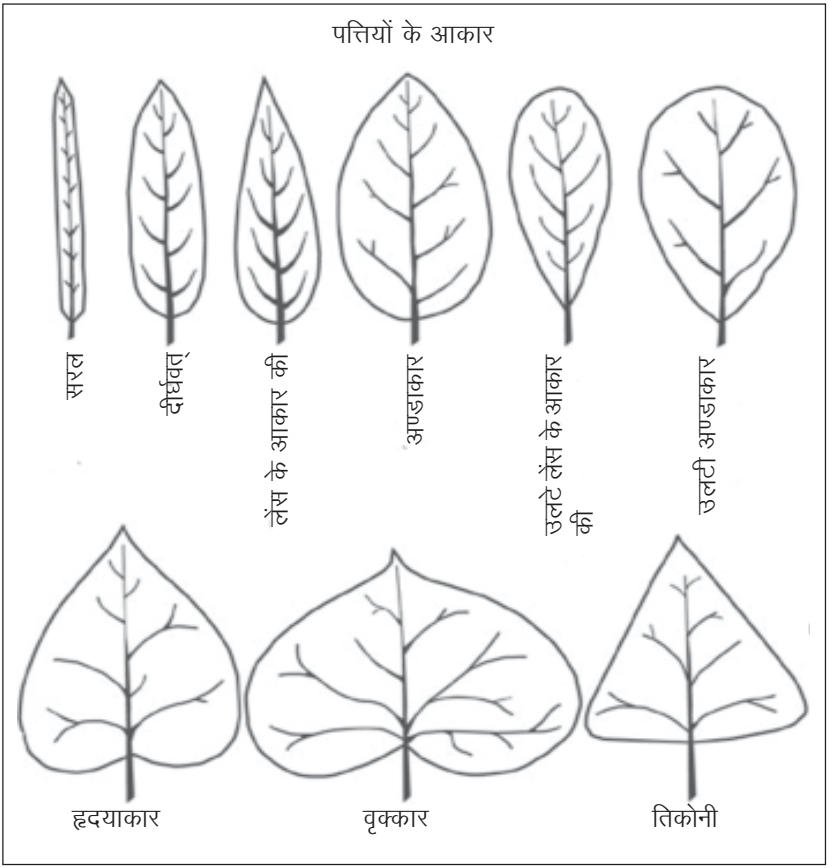

- फलक के छोटे व बड़े होने के अलावा इनमें अण्डाकार, गोल, हृदयाकार, भालाकर, बेलनाकार व इस तरह की कई आकृतियाँ मिलती हैं।
- पर्ण शिखाग्र कमल, मेथी, सदाबहार, गुलफा, ब्रायोफायलम, अल्सटोनिया व अन्य कई प्रकार के पौधों की पत्तियों में नहीं पाया जाता।
- तने पर पत्तियों की जमावट सम्मुख, एकान्तर, चक्रीय, क्रम में पाई जाती है।

विभिन्न प्रकार के पौधों में पत्तियों व इनके विन्यास का अवलोकन करके पैटर्न पहचानने का प्रयास किया गया। इसमें साथियों का अवलोकन रहा कि कुछ पौधों में प्राथमिक व द्वितीयक या केवल एक ही तरह की शिराएँ ही मिलती हैं, व ये एक-दूसरे के समान्तर

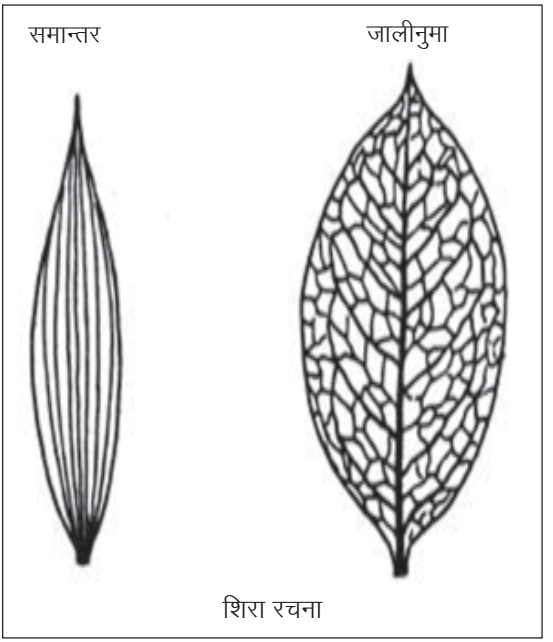

शिरा रचना

व्यवस्थित होती हैं। सहभागी अवलोकन करने पर चिन्हित कर पाए कि ऐसे सभी पौधों की जड़ों में एक-सा पैटर्न है। इन सब में जड़ें रेशों के समान पाई जाती हैं।

जबकि वे पौधे जिनकी पत्तियों में त्रतीयक शिराएँ पाई जाती हैं, उनमें शिराओं की व्यवस्था जाली के समान देखने को मिलती है व इनकी जड़ों में एक मुख्य जड़ नज़र आती है जो आगे जाकर शाखित हो जाती है।

इसी क्रम में विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधों का अवलोकन किया गया। सहभागियों ने अनुभव किया कि वे आम, अशोक, जेट्रोफा, सदाबहार, जंगली घास, कनेर, पपीता, गुड़हल, चाँदनी, आदि में पत्तियों को सहजता से पहचान पा रहे हैं। जबकि आड़ू, नीम, आंवला, गुलमोहर, इमली आदि की पत्तियों को पहचानने में काफी असमंजस की स्थिति बनती नज़र आई कि आखिर एक पत्ती किसे माना जाए – सबसे छोटे भाग को, मध्यम भाग को या फिर पूरी बड़ी-सी संरचना यानी टहनी को। इस पर सहभागियों ने यह ढूँढ़ने की कोशिश की कि जिस भी भाग को हम पत्ती मान रहे हैं, उसके पीछे क्या आधार देखा जाना चाहिए। यूँ ही तो किसी भी संरचना को पत्ती कहना ठीक नहीं। साथ ही सहभागियों से यह प्रश्न भी किया गया कि कोई एक विशेष हिस्सा ढूँढ़कर क्या किसी पत्ती को पहचाना जा सकता है? कैसे तय कर सकते हैं कि हम पत्ती के किसी एक भाग को ही देख रहे हैं, या फिर पूरी पत्ती को? इस पर सहभागी अनुभव कर पाए कि इसके लिए तो पत्ती तने के साथ कैसे जुड़ी हुई है, उस पूरे हिस्से को ही देखने की आवश्यकता होगी, तभी पहचान पाना सम्भव होगा। इसके लिए समूह में बातचीत करते हुए पुनः विश्लेषण

करने का प्रयास किया गया कि पेड़ पर लगी पत्तियों की स्थिति किस-किस तरह से नज़र आती है; साथ ही नई शाखाएँ, फूल व पत्तियाँ कहाँ-कहाँ से निकलती/उगती हुई पाई जाती हैं। अवलोकन करते हुए सहभागियों द्वारा अनुभव किया गया कि नीम, गुलमोहर, आंवला, आड़ू, बबूल, ढाढून (जंगली पौधा) आदि में कक्षस्थ कलिका की स्थिति बहुत अलग-अलग होती है। इस कलिका का जन्म तना व पत्ती के कक्ष से होता है। कलिका की स्थिति के आधार पर किस छोटे या बड़े हिस्से को पत्ती माना जाए यह चिन्हित किया जा सकता है। सभी सहभागियों ने काफी उत्साह व रुचि के साथ इस विचार-विमर्श में भागीदारी की।

सत्र के बाद जब सहभागियों से उनकी राय जानी गई तो निम्न विचार आए:

- पत्तियों में प्राथमिक, द्वितीयक, त्रतीयक शिराओं की पहचान कर पाए। सभी पत्तियों में त्रतीयक शिराएँ नहीं पाई जाती हैं।
- बहुत ध्यान से देखने पर महसूस होता है कि सभी पत्तियों में इन शिराओं की जमावट में भिन्नता होती है।
- इन शिराओं के आधार पर विन्यास व्यवस्था को समान्तर व जालिकावत में विभेदित किया जाता है। जालिकावत व्यवस्था में भी हर पौधे की पत्ती में अलग तरह की जाली नज़र आती है।
- इस अभ्यास से पत्तियों के बारे में ठीक से समझ बनाने का मौका मिला। पहले तो जिस भाग में शिरा विन्यास नज़र आए, हर उस भाग को पत्ती मान लिया करते थे, चाहे वह छोटा हो या बड़ा। प्याज़, लहसुन में जिसे हम बेकार समझकर काट कर फेंक देते हैं, उस हिस्से का अवलोकन करने पर पाया कि प्याज़ की सभी सफेद परतें यहीं पर तो जुड़ी होती हैं, और नई

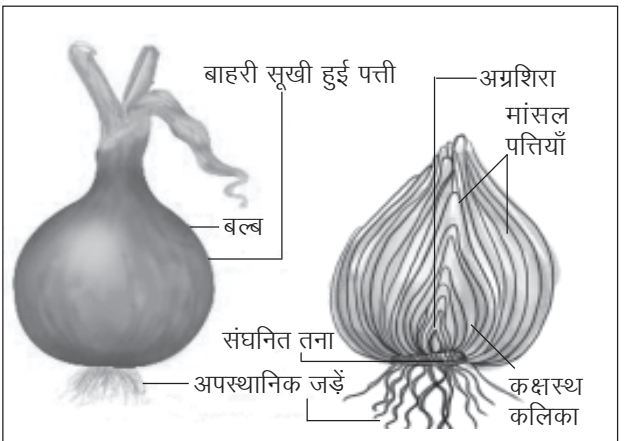

(A) प्याज़ का शल्कयुक्त बल्ब (B) बल्ब की लम्बवत काट

पत्ती भी यहीं से निकल रही हैं। अतः सूखी प्याज़, व लहसुन में खाए जाने वाले हिस्से भी हरे न होने के बाद भी पत्तियाँ ही तो हैं। और जिसे फेंक देते हैं वो हुआ तना।

उप-समूहों द्वारा आम, जामुन, चना, मटर, धनिया, कद्दू, तिल, बादाम, नीम आदि की पत्तियों, जड़ व बीजों को खोलकर देखा गया। अन्य दो उप-समूहों द्वारा मक्का, गेहूँ , बाजरा, लहसुन, प्याज़ आदि की पत्तियों, जड़ों व बीजों को देखा गया। पहले समूह का प्रस्तुतिकरण रहा कि सभी पत्तियों में जालिका जैसी शिराएँ हैं, इनमें एक मुख्य मोटी जड़ है व इनकी जड़ों में बारीक-से रेशे हैं, और बीजों में एक से अधिक बीजपत्र हैं। दूसरे समूह का प्रस्तुतीकरण रहा कि सभी पत्तियों में समान्तर शिराएँ हैं, इनकी सभी जड़ें पतले रेशों की तरह हैं और जिसमें कोई मोटी मुख्य जड़ नहीं है व बीजों में 1 ही बीजपत्र है। अतः इन पैटर्न के आधार पर सहभागियों की राय रही कि पत्तियों को देखकर एकबीजपत्री व द्विबीजपत्री पौधों की पहचान की जा सकती है व इनके आधार पर जड़ें कैसी होंगी, यह भी बताया जा सकता है।

पत्तियाँ तो हमेशा ही देखते थे, पर इस तरह से पहली बार देखीं। पहले तो लगता था कि जीव-विज्ञान कितना उबाऊ है, पर अब लगता है

इसमें भी हमारे पास काफी कुछ है करने के लिए।

इस पूरे काम में शिक्षकों की ऊर्जा व सृजनात्मक भागीदारी को देखने और समझने के बाद मैंने यह महसूस किया कि राजकीय शिक्षकों के साथ बेहतर कार्यशालाएँ सम्भव हैं यदि उन पर विश्वास रखें कि वे अपने सवालों के जवाब ढूँढ़ने में सक्षम होंगे। इसके लिए ज़रूरी यह हो जाता है कि हम उन्हें ऐसी प्रक्रियाओं से गुज़रने का मौका दें जिसमें उनके मन में अपनी समझ के बारे में सवाल पैदा हों और जहाँ तक हो सके उन्हें स्वयं के प्रयासों से सवालों के जवाब खोजने के मौके दें।

अलका तिवारी: अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, टोंक (राजस्थान) में कार्यरत हैं। विज्ञान से जुड़े मुद्दों पर अध्ययन व विमर्श में विशेष रुचि।

विज्ञान का अराजकतावादी सिद्धान्त

रॉबिन डनबार

अब तक मैंने अपना ध्यान विज्ञान के तर्कसंगत सिद्धान्तों पर केन्द्रित किया है, जिन्हें मुख्यधारा का ही हिस्सा माना जाता है। यह उचित नहीं होगा कि विज्ञान के दर्शनशास्त्र पर इस संक्षिप्त दृष्टिपात को कुन के विचारों के अलावा सापेक्षता के सिद्धान्त से सम्बद्ध अन्य दृष्टिकोणों का ज़िक्र किए बिना समाप्त कर दिया जाए। एक अहम लिहाज़ से सापेक्षता का नज़रिया कांट के इस कथन से निकलता है कि इस संसार को देखने की हमारी दृष्टि हमारे सिद्धान्त तय करते हैं। इस कथन को उसके तार्किक निष्कर्ष तक पहुँचाया जाए तो इसका ज़ोर इस बात पर है कि संसार के हमारे विवरण भी सिद्धान्तों के अस्तित्व को पहले से मान कर चलते हैं। सामाजिक विज्ञानों में यह नज़रिया इस दावे को बल देता है कि हम भाषा में इतने सराबोर रहते हैं कि हमारे द्वारा इस्तेमाल किए जा रहे शब्द अपने आस-पास के संसार को देखने के हमारे तौर-तरीके तक को तय करते हैं।

अन्तर-सांस्कृतिक अन्तर

मैं जो कुछ भी पहले कह चुका हूँ, उससे स्पष्ट होगा कि उपरोक्त दावे में एक खास तरह का तार्किक आधार है। यदि हम भाषा की व्याख्या अपने ढाँचागत सिद्धान्तों के सन्दर्भ में करें तो स्पष्ट है कि भाषा सचमुच इस बात को तय करती है कि हम संसार को किस नज़रिये से देखते हैं: हमारे ढाँचागत सिद्धान्तों का मकसद बिलकुल इसी कार्य को पूरा करने का है - यानी हमारा ध्यान दृष्टिगोचर संसार की प्रमुख विशेषताओं की ओर दिलाना। हमारी भाषा अपने मौजूदा स्वरूप में इसलिए विकसित हुई है क्योंकि वह हमें अपने संसार को गठित करने का साधन प्रदान करती है। इस नज़रिये को ध्यान में रखें तो हम सब एक ही संसार में रह रहे हैं लेकिन उसके बारे में बात करने के लिए भिन्न-भिन्न शब्दों और विचारों को प्रयोग में लाते हैं: इसकी वजह से अन्तर-सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों के अन्तर्गत हो रही बातचीत

में गलतफहमियाँ उत्पन्न हो सकती हैं, लेकिन हम सबके द्वारा एक ही संसार में रहने के तथ्य (और यह, कि हम सब उसे लगभग एक ही नज़र से देखते हैं) का अर्थ है कि एक बार जब भाषाई अन्तर स्पष्ट कर दिए जाते हैं तो हम एक सार्थक, सुसंगत वार्तालाप कर सकते हैं।

इससे भी अधिक अतिवादी एक व्याख्या यह है कि विभिन्न संस्कृतियाँ अक्षरशः अलग-अलग संसारों में बसती हैं क्योंकि हम जो देखते और अनुभव करते हैं, वह असल में हमारी भाषा द्वारा तय होता है। ऑस्ट्रेलिया के मूल निवासी (अबॉरिजिनल) का संसार यूरोपियन निवासियों के संसार से आवश्यक तौर पर बहुत ही अलग है क्योंकि वह उस संसार को निर्मित करने में भिन्न अवधारणाएँ और विचार प्रयोग में लाता है; उसका तर्क अलग किस्म का है और कार्य-कारण सम्बन्ध का भाव भी अलग ही तरह का है, और इन कारणों से वह संसार की संरचना को हमारे अनुभव के मुकाबले अलग ढंग से देखता है। इसके परिणामस्वरूप इस बात की कोई आशा नहीं है कि हम कभी भी किसी दूसरी संस्कृति के व्यक्ति के साथ कोई सुसंगत बातचीत कर सकते हैं - इसलिए, कि हमारे पास कोई भी साँझा आधार नहीं है जिसकी मदद से हम एक संस्कृति की निर्मित अवस्थाओं को दूसरी संस्कृति की ऐसी अवस्थाओं में परिवर्तित कर पाएँ। सापेक्षता के सिद्धान्त के अनुरूप सोचने वालों के दृष्टिकोण का लब्बोलुबाब यही है, और प्रतीत होता है कि इस दृष्टिकोण ने सामाजिक मानवविज्ञान तथा मानविकी के क्षेत्रों में बहुत-से लोगों को काफी गहरे तक प्रभावित किया है।

ज्ञानशास्त्रीय अराजकता

अमेरिकन दार्शनिक पॉल फेयरअबेंट (Feyerabend) सापेक्षता के सिद्धान्त की एक महत्वपूर्ण आवाज़ हैं। उनके विचार इसलिए दिलचस्प लगते हैं क्योंकि वे विज्ञान के लगभग अन्य सभी महत्वपूर्ण दार्शनिकों के विचारों के बिलकुल विपरीत हैं। इसी के फलस्वरूप वे ज्ञान के समाजशास्त्रियों के लिए एक प्रकार का दार्शनिक मसीहा बन गए हैं जब कि विज्ञान के परम्परागत दार्शनिक उन्हें काफी हद तक एक लीक से हट कर, आज़ाद-खयाल, विद्रोही किस्म का व्यक्ति मानते हैं। फेयरअबेंट हमेशा से ही ज्ञान की एक शाखा के रूप में विज्ञान के दर्शन के बड़े निन्दक रहे हैं - यहाँ तक कि वे इस बात पर ज़ोर देते रहे हैं कि वह व्यावहारिक वैज्ञानिकों के लिए किसी भी रूप में मूल्यवान नहीं रहा है क्योंकि वह तर्कशास्त्र की, और अर्थ निकालने से सम्बन्धित छोटी-मोटी समस्याओं में उलझा रहा है, जिनका अधिकतर वैज्ञानिकों के सक्रिय जीवन पर कोई प्रभाव नहीं रहा है। यह एक ऐसा नज़रिया है जिसके प्रति बहुत-से वैज्ञानिक बेशक गरमजोशी महसूस करेंगे! लेकिन वर्तमान सन्दर्भ

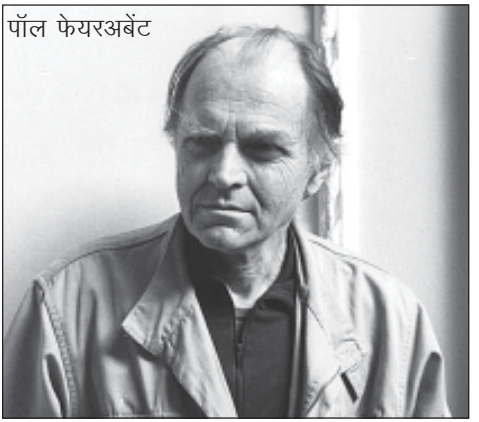
पॉल फेयरअबेंट

में फेयरअबेंट का प्रमुख महत्व इस बात में है कि उन्होंने विज्ञान को देखे जाने के नज़रिये के बारे में दो महत्वपूर्ण मान्यताओं को चुनौती दी है।

एक का सम्बन्ध तो इस बात से है कि हम किस प्रकार परिकल्पनाओं या धारणाओं का चुनाव करते हैं। फेयरअबेंट का मानना है कि विज्ञान स्वयंसेवा में लग गया है और इसका नतीजा यह है कि दिलचस्प किस्म के सिद्धान्त बिना किसी चर्चा के ही नकार दिए जाते हैं, केवल इस कारण से कि वे संसार के बारे में वर्तमान में प्रचलित विचारों के साथ मेल नहीं खाते। फेयरअबेंट के मतानुसार अपने वर्तमान सिद्धान्तों से नए तर्काधार प्राप्त करने की बजाए हमें किन्हीं नए सूझने वाले विकल्पों पर विचार करना चाहिए, पहली नज़र में वे चाहे कितने ही बेतुके और बेहूदा क्यों न लगें। इस अर्थ में फेयरअबेंट, उन्हीं के शब्दों में, ज्ञानशास्त्रीय अराजकता को प्रतिपादित करते हैं। विज्ञान की प्रकृति के बारे में परम्परागत सैद्धान्तिक सोच के लिए उनकी दूसरी चुनौती यह दलील देने में है कि वैज्ञानिक तरीके या विधि जैसा कुछ भी नहीं होता है। बल्कि वे तो यह दावा भी करना चाहते हैं कि विज्ञान को जिस प्रकार प्रयोग में लाया जा रहा है, उसमें एक धर्म होने के सभी प्रमुख विशिष्ट चिन्ह मौजूद हैं: उसकी कुछ विशेष स्तर की मान्यताएँ होती हैं जिन्हें उसका प्रतिपादन करने वालों द्वारा माना जाना लाज़मी होता है - और ऐसा न किए जाने की सूरत में सामाजिक बहिष्कार तथा बिरादरी से बाहर किए जाने का सामना करना पड़ता है।

विज्ञान के कम ही दार्शनिक फेयरअबेंट द्वारा दी गई विज्ञान की अवधारणा से सहमत हैं, हालाँकि वे मानते हैं कि उनके द्वारा दी गई कुछ दलीलों में दम है। मसलन, उनका दावा कि इस संसार के बारे में हमारा ज्ञान तब ही सब से बेहतर तरीके से विकसित होता है जब उसे नए सिद्धान्तों से चुनौती का सामना करना पड़ता है, विवादास्पद नहीं है। यह तो आखिर पॉपर के तर्क का आधार है: पॉपर हमेशा इस बात पर ज़ोर देते थे कि अटकलें और अनुमान (यानी नए तर्काधार) जहाँ तक हो सके, निर्भीक

होने चाहिए, क्योंकि जितना अधिक वे अविश्वसनीय लगेंगे, उतना ही अधिक मज़बूत उनका परीक्षण होगा। लेकिन फेयरअबेंट इससे भी आगे तक जाना चाहते हैं: वे बौद्धिक बहुलता के पक्षधर हैं, और उनका आग्रह खास तौर से उन लोगों को आकृष्ट करता है जो इस बात पर ज़ोर देते हैं कि विज्ञान को कोई विशेषाधिकार नहीं मिलने चाहिए। बल्कि फेयरअबेंट तो विज्ञान तथा कविता के बीच अनुरूपता तक का दावा करते हैं: उन्होंने एक बार सुझाव रखा था कि हमें परिकल्पनाओं का चुनाव इस आधार पर करना चाहिए कि वे हमें कितना आनन्द देती हैं।

लेकिन संसार के बारे में ज्ञान हासिल किए जाने के आम नुस्खे के तौर पर फेयरअबेंट का अराजकतावादी दर्शन एक तथ्य को ध्यान में रखने में असफल रहता है - कि वैज्ञानिक आपस की होड़ में लगी परिकल्पनाओं में चुनाव के लिए तर्क आधारित मापदण्डों का प्रयोग करने की कोशिश करते हैं। फेयरअबेंट शायद इस बात पर ज़ोर देना चाहेंगे कि जब वैज्ञानिक किसी विशेष सिद्धान्त को अस्वीकार करने का निर्णय लेते हैं तो वे ऐसा किसी-न-किसी सनक के आधार पर करते हैं। और हालाँकि कुछ मामलों में ऐसा होता भी है (क्योंकि किसी भी नए, जटिल विचार की मान्यताओं, संरचना तथा निहितार्थों के बारे में पूरी सावधानी से सोचने-विचारने की कोशिश और मेहनत किसी आइंस्टाइन तक को भी क्षीण कर सकती है), नए विचारों को पहली नज़र में ही नकार देना विज्ञान के लिए कोई मददगार तरीका नहीं है, क्योंकि विज्ञान में विकास अन्ततः संसार को देखने के नए तरीकों पर निर्भर करता है। असल में समस्या तो यह है कि कोई भी मूर्ख नए विचार सोच-निकाल सकता है; विकास की असली कुंजी यह अन्दाज़ा लगाने में है कि यह संसार वास्तव में कार्य कैसे करता है - और यह एक बहुत ही मुश्किल काम है।

सार्थक विचारों की अमरता

विज्ञान की शाश्वत् समस्या चन्द अच्छे विचारों को बाकी की बेकार बातों से अलग करने की है। आम तौर पर वैज्ञानिक बहुत-सी रणनीतियाँ काम में लेते हैं जो अनौपचारिक तरीके से ऐसा करने में मदद देती हैं। एक तो यह कि नया विचार, खुद के अलावा दूसरे बहुत-से लोगों को प्रमाण और तर्क के आधार पर अपना कायल बनाए: इस प्रकार हम कम-से-कम इन्सान की यह सोचने की कमज़ोरी के विरुद्ध सावधान रहते हैं कि हमारे द्वारा रचा गया कोई भी विचार हमारी अद्वितीय, असाधारण प्रतिभा का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरी रणनीति यह है कि सम्बन्धित विचार उन सन्दर्भों में अर्थपूर्ण लगे जिनके सम्बन्ध में हमारे पास पूर्व-ज्ञान है - यदि वह वर्तमान संसार के हमारे ज्ञान के विरुद्ध जाता

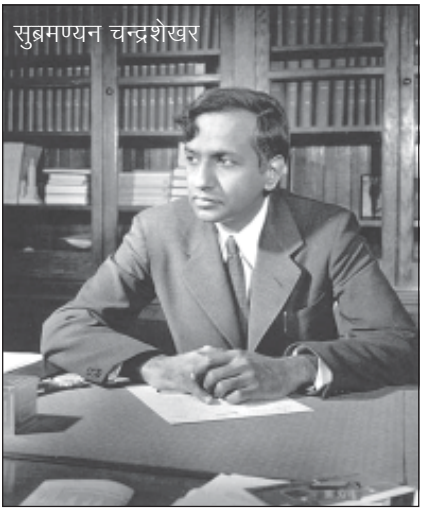
सुब्रमण्यन चन्द्रशेखर

है तो एक बेतुके किस्म के विचार के सही होने की कम ही गुंजाइश होगी। तीसरा, यदि किसी विशेष तर्काधार को इसलिए अस्वीकार कर दिया जाता है कि वह निरर्थक लगता है, तो इस का यह अर्थ नहीं है कि उस पर कभी भी पुनर्विचार न किया जाए। भारतीय खगोलशास्त्री सुब्रमण्यन चन्द्रशेखर का मशहूर उदाहरण इसी बात से सम्बन्धित है।

1928 में चन्द्रशेखर ने सितारों में स्वयं अपनी गुरुत्व की शक्तियों का प्रतिरोध करने सम्बन्धित क्षमताओं के बारे में कुछ नए विचार विकसित किए: वे गणितीय आधार पर यह दिखा पाने में सफल हो गए कि सितारे अपने नाभिकीय ईन्धन (न्यूक्लियर फ्यूल) के समाप्त होने पर स्वयं अपने पिण्ड की गुरुत्व शक्तियों का प्रतिरोध करने में सक्षम नहीं रहेंगे, और इस लिए स्वयं पर ही ढह जाएँगे। चन्द्रशेखर द्वारा किए गए गणित के मुताबिक जिन सितारों का परिमाण (mass) हमारे सूर्य के परिमाण से लगभग डेढ़ गुना से भी कुछ कम है (एक मूल्य जिसे चन्द्रशेखर सीमा के नाम से जाना जाता है), वे *व्हाइट ड्वार्फ* नामक एक अत्यधिक सघन सितारे के रूप में सामने आएँगे। लेकिन चन्द्रशेखर के गणित के निहितार्थ ये भी थे कि उन्हीं परिस्थितियों में अधिक विशाल सितारे गायब हो जाने की हद तक अत्यधिक छोटे आकार में ढह जाएँगे (जिसे हम आज *ब्लैक होल* की प्राकृतिक घटना के रूप में जानते हैं)। दुर्भाग्य से केम्ब्रिज में उनके अधीक्षक, मशहूर भौतिकविज्ञानी ऑर्थर एडिंग्टन को ऐसा झटका लगा कि उन्होंने चन्द्रशेखर से इस विचार के नामाकूल और बेतुका होने की बात कही। एक कर्तव्यपरायण विद्यार्थी होने के नाते चन्द्रशेखर ने अपने विचारों पर आगे बढ़ने की प्रक्रिया को वहीं विराम दे दिया। लेकिन कई दशकों बाद उन्होंने इन विचारों पर फिर से अधिक विस्तार से काम करना शुरू किया और समय के साथ इन्हीं के आधार पर उन्हें नोबेल पुरस्कार की प्राप्ति हुई। ब्लैक होल्ज़ तथा न्यूट्रोन सितारों के बारे में हमारी मौजूदा समझ पर चन्द्रशेखर के विचारों का विशेष

तौर पर महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है। हाँ, 1928 में हमारी समझ और ज्ञान की स्थिति को ध्यान में रखें तो ये विचार निरर्थक लगते थे। लेकिन लगता है कि एक अच्छे सिद्धान्त को हमेशा के लिए दबाकर नहीं रखा जा सकता।

एकदम नए विचार

ऐसा ही एक और उदाहरण जर्मन मौसम विज्ञानी एल्फ्रेड वेगेनर द्वारा 1915 में प्रतिपादित महाद्वीपीय विस्थापन के सिद्धान्त का है। वेगेनर ने तर्क दिया कि 20 करोड़ वर्ष पूर्व धरती के महाद्वीप पैंजिया नामक अतिविशाल महाद्वीप के रूप में एक ही विशाल समूह के तौर पर मौजूद थे, और यही बाद में विभिन्न महाद्वीपों के रूप में अलग-अलग हो गए (जिन्हें हम उनके वर्तमान स्वरूप में देखते हैं), और उनका खिसकना लगातार जारी रहा। इसके लिए उनके द्वारा दिया गया प्रमाण आंशिक रूप से इस तथ्य पर आधारित था कि अपने मौजूदा स्वरूप में महाद्वीप एक विशाल चित्र पहेली की तरह एक-दूसरे में जुड़ते हुए से नज़र आते हैं। उदाहरण के लिए दक्षिणी अमेरिका बहुत ही सफाई के साथ पश्चिमी अफ्रीका के कन्धे के उभार में बिलकुल उपयुक्त ढंग से सट जाता है। वेगेनर के विचारों को कभी भी गम्भीरता से नहीं लिया गया। उनकी ओर ध्यान तो 1960 के दशक में जाना शुरू हुआ जब भूगर्भविज्ञानियों को प्रमाण मिलने प्रारम्भ हुए कि धरती का पटल (layer) असल में कई

एल्फ्रेड वेगेनर

पट्टिकाओं (tectonic plates) से मिलकर बना है। ये प्लेट्स धरती के पिघले हुए अन्दरूनी सारभाग पर तैरती रहती हैं और लगातार गतिशील रहती हैं। जब उनके किनारे आपस में टकराते हैं तो रॉकीज़, हिमालय तथा ऐंडीज़ जैसी पर्वत शृंखलाएँ ऊपर को उठ जाती हैं या फिर पूर्वी अफ्रीकन रिफ्ट घाटी या कैलिफोर्निया के सैन ऐंड्रियज़ जैसी दोष रेखाएँ (फॉल्ट लाइन्ज़) उभर कर आती हैं। जब इस तथ्य की पहचान कर ली गई तो वे जीवभौगोलिक (बायोज्योग्राफिकल) प्रमाण अचानक सार्थक और तार्किक लगने लगे जो एक-से प्रकार के जीवाश्मों की प्रजातियों (फॉसिल स्पीशीज़) के उन महाद्वीपों में पाए जाने के बारे में थे जहाँ पर अब बहुत ही अलग किस्म के जीव पाए जाते हैं।

तर्क-आधार और विचारों की जाँच

हमें सतर्क रहना होगा कि इस प्रकार के उदाहरणों की व्याख्या इस बात के प्रमाण के तौर पर न की जाए कि वैज्ञानिक व्यवस्थाएँ माफियानुमा षडयंत्र के तहत नए विचारों को सुनने तथा स्थान देने में बाधा उत्पन्न करती हैं। थोड़े-बहुत महत्व वाले अधिकतर विचार और सिद्धान्त या तो सुरक्षित रहेंगे या फिर उन्हें फिर से खोज लिया जाएगा। कोई विशेष वैज्ञानिक चाहे कितना ही माफिया सरदार की तरह क्यों न हो, वह इस संसार में हर किसी को किसी अन्य व्यक्ति के अस्थाई तौर पर प्रस्तुत नए सिद्धान्त पर विचार करने से नहीं रोक सकता। वास्तव में तो इस बात के अच्छे-खासे प्रमाण हैं कि आलोचनात्मक प्रक्रिया को वैज्ञानिक कार्यविधि के आवश्यक हिस्से के तौर पर देखा जाए। यह प्रक्रिया उन विचारों और सिद्धान्तों को छाँटने के लिए प्रारम्भिक छलनी का काम करती है जो पूरी तरह से बेतुके हैं या जिन्हें और भी अधिक सावधानी से विकसित किए जाने की ज़रूरत है। वैज्ञानिक तथा आम-साधारण लोग नए-नए विचारों और सिद्धान्तों पर निरन्तर उड़ान भरते रहते हैं। इनमें से अधिकतर तो जन्म ही नहीं लेते क्योंकि उससे पहले ही, करीब से जाँचे जाने पर वे तार्किक आधार पर त्रुटिपूर्ण निकलते हैं। अन्य ऐसे ही सिद्धान्त और विचार बीच में ही छोड़ दिए जाते हैं - अधिक प्रमाण मिलने के इन्तज़ार में, या फिर तकनीकी समस्याओं के हल के अभाव में। कुछ को इसलिए भी ताक पर रख दिया जाता है क्योंकि हम ज्ञान के

अपने वर्तमान स्तर के आधार पर उन्हें सार्थक नहीं मान पाते।

तो, विज्ञान गहन आलोचना की एक प्रक्रिया है। कुछ ही विचार खोजी वैज्ञानिक की आत्मालोचना के पहले दौर से बच पाते हैं और हमेशा यही कुछ विचार होते हैं जिनके बारे में हमें सुनने को कुछ मिलता है। लेकिन स्वयं को इस बात के लिए राज़ी कर लेना बहुत ही आसान होता है कि आपके दिमाग की नवीनतम उपज आइंस्टाइन द्वारा 1905 में दिए गए सापेक्षता के सिद्धान्त के बाद से अब तक का सब से सूझवान, प्रवीण विचार है। अफसोस है कि इन्सान की प्रजाति में नए और असाधारण विचारों को बेचने वाले स्वयंभू मसीहों की कभी भी कमी नहीं रही है। इसलिए समस्या यह है कि रास्ते में आने वाले प्रत्येक खयाली पुलाव पर समय बरबाद करने से बचा कैसे जाए। सही अर्थों में किसी मूल्यवान तर्काधार और कम मूल्यवान तर्काधार में से एक का चुनाव करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि उसे सार्वजनिक वाद-विवाद के क्षेत्र में ला कर जाँच लिया जाए। यदि आपके द्वारा प्रतिपादित विचार आप के सहकर्मियों द्वारा किए गए शुरुआती शंकापूर्ण स्वागत को झेल जाता है तो अधिक सम्भावना है कि आप उसे आगे ले जाने के लिए आश्वस्त रहेंगे (खास तौर से तब जब आपका प्रत्येक सहकर्मी अपने ही सबसे प्यारे विचार या सिद्धान्त को सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त के रूप में देख रहा हो!)। और यदि आपका विचार शुरुआत में ही नकार दिया जाता है जब कि आप का पक्का विश्वास है कि वह एक बहुत ही अच्छा सिद्धान्त है, तो सम्भावना है कि आपने उसके प्रभावों और मान्यताओं के बारे में इस गहराई तक नहीं सोचा कि आप शंका करने वालों को अपनी बात पर सहमत कर पाएँ। अपने विचार को त्यागने की बजाए चाहिए यह कि अपनी मान्यताओं पर फिर से, अधिक सावधानी के साथ सोच-विचार किया जाए ताकि आप उसके बारे में लोगों को अधिक आश्वस्त कर सकें। इसी प्रक्रिया में या तो सिद्धान्त की छिपी हुई त्रुटियाँ सामने आ जाएँगी या फिर सिद्धान्त पर दोबारा इस प्रकार काम किया जाएगा कि उसके हक में दी गई दलीलें दूसरों को राज़ी करने के लिए अधिक कारगर सिद्ध होंगी।

यह द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया विज्ञान का एक अन्तरंग हिस्सा है, और इस रूप में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है कि वह एक ही समय पर कई विचारों की वजह से हमारा ध्यान भंग होने से हमें बचाती है। इसी से फेयरअबेंट के विचारदर्शन के लिए सबसे गम्भीर समस्या पैदा होती है। विज्ञान आम तौर पर नए विचारों के सावधान मूल्यांकन और जाँच-परख के आधार पर विकास करता है। जब तक वह मूल्यांकन पूर्ण न हुआ हो (न्यूटोनियन भौतिकशास्त्र के मामले में इसके लिए

दो सदियों का एक बड़ा हिस्सा गुज़रा!), प्रत्येक नए विचार का पीछा करने से कोई लाभ नहीं होने वाला। बिना यह जाने कि पुराना सिद्धान्त किस हद तक गलत है, हमारे पास यह तय करने का कोई आधार नहीं रहता कि एक बेहतर सिद्धान्त में क्या कर पाने की क्षमता होना आवश्यक है। वह बिलकुल हमारी नाक के सामने हो तो भी हम उसे पहचान नहीं पाएँगे।

इसलिए, हालाँकि फेयरअबेंट का अतिवादी सुझाव वास्तविक संसार की खोजबीन की मेहनत करने की बजाए कुर्सी पर बैठे-बैठे अन्दाज़े लगाने वालों के लिए आरामदायक हो सकता है, अक्षरशः देखें तो यह विज्ञान के लिए एक असन्तुष्टि भरा नुस्खा है और इसका कारण संज्ञान के स्तर पर हमारी कमज़ोरियों से सम्बद्ध हैः जटिल सिद्धान्तों में कारण-प्रभाव सम्बन्धों की भूलभुलैया में से होकर ध्यानपूर्वक सोच पाना हमें अविश्वसनीय हद तक मुश्किल लगता है, और इसीलिए हम बहुत ही दिलचस्प और उत्तेजक ढंग से तैयार किए गए लेकिन बेहद त्रुटिपूर्ण विचारों द्वारा आसानी से विचलित हो जाते हैं।

इस सबसे उभरने वाली महत्वपूर्ण बात यह है कि विज्ञान एक विधिसंगत नुस्खा है, न कि सिद्धान्त का कोई विशेष कलेवर। यह तो एक विधि है जिसके माध्यम से हम तर्काधारों के सृजन तथा उनसे प्राप्त भविष्यवाणियों की जाँच के आधार पर संसार के बारे में जानकारी हासिल करते हैं। अन्य के अलावा सामाजिक मानवविज्ञानियों ने तर्क दिया है कि यह नज़रिया आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति में ही पाया जाता है। लेकिन क्या यह सच में सही है? ...अनुभवसिद्ध विज्ञान के तौर-तरीके वास्तव में सार्वभौमिक हैं और जीवन के सब उच्च स्वरूपों की विशेषता हैं।

फेयरअबेंट विज्ञान की श्रेष्ठता स्वीकार करने में क्या आपत्तियाँ उठाते हैं? लेखक किन तर्कों से फेयरअबेंट की अराजकतावादी सोच के विरुद्ध विज्ञान की तर्कसंगतता का बचाव करते हैं?

रॉबिन डनबारः यूनिवर्सिटी ऑफ ऑक्सफोर्ड में सोशल एंड एवोल्यूशनरी न्यूरोसाइंस रिसर्च ग्रुप, एक्सपेरीमेंटल सायकोलॉजी विभाग के विभागाध्यक्ष हैं और एवोल्यूशनरी साइकोलॉजी के प्राध्यापक हैं। बहुत-सी शैक्षिक पुस्तकें लिखी हैं और दो साल विज्ञान लेखन भी किया है।
अँग्रेज़ी से अनुवादः रमणीक मोहन।

यह लेख रॉबिन डनबार की किताब *दी ट्रबल विद साइंस*, फेबर एंड फेबर, 1995, से लिया गया है।

आप इस लेख को एकलव्य द्वारा विज्ञान शिक्षण पर तैयार की जा रही पुस्तक के अन्तर्गत भी पढ़ सकेंगे।

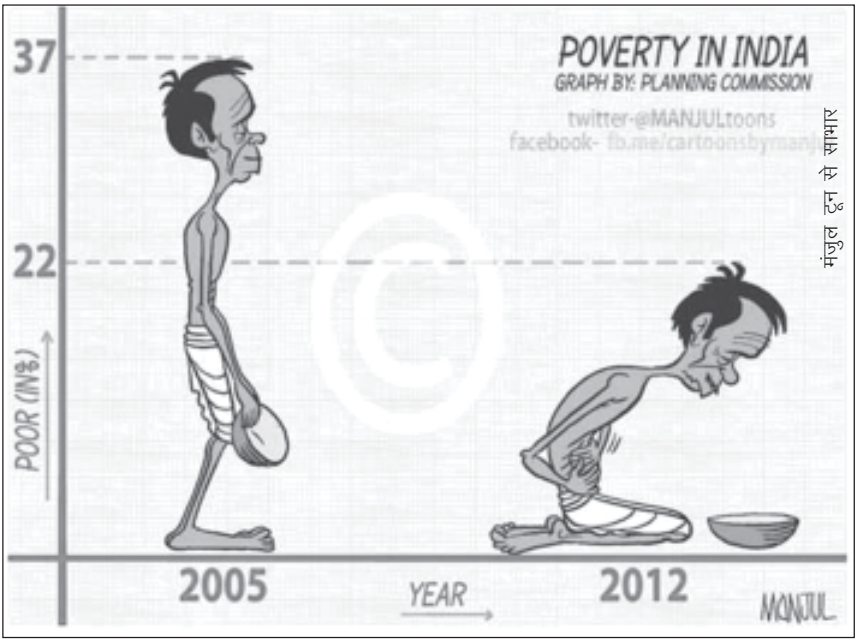

गरीबी पढ़नाः दृष्टि की गरीबी

सुकन्या बोस

यह लेख अध्ययन के एक विषय-प्रसंग के रूप में गरीबी – जिसे अर्थशास्त्र के पाठ्यक्रमों के अन्तर्गत आम तौर पर शामिल किया जाता है – की जाँच-पड़ताल करने के द्वारा भारतीय स्कूलों में पढ़ाए जाने वाले अर्थशास्त्र की प्रकृति की छानबीन करता है। हमारा उद्देश्य उस चश्मे की, जिसके माध्यम से विकास के मुद्दों को विद्यार्थियों के लिए प्रस्तुत किया जाता है, और ज्ञानशास्त्रीय तथा शैक्षणिक प्रासंगिकता की दृष्टियों से उसकी रूपरेखा की उपयुक्तता

की जाँच-परख करना है। संकुचित प्रत्यक्षवादी पद्धति जिस दृष्टिकोण को प्रश्रय देकर बढ़ावा देती है, उसमें निहित गम्भीर समस्या प्रखर रूप से स्पष्ट है। उसकी खामियाँ हमें ऐसे वैकल्पिक ढाँचों और पद्धतियों की चर्चा में ले जाती हैं, जो मूल रूप से विषयों की सीमारेखाओं का अतिक्रमण करने की इच्छा के परिणामस्वरूप सामने आते हैं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन.सी.ई.आर.टी., 2005) जो भारतीय स्कूलों में क्या (और किस प्रकार) पढ़ाया जाना चाहिए इसका खाका खींचने वाला एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है, को लेकर हुए सामाजिक विचार-विमर्श ने विचारों तथा आकांक्षाओं की विस्तृत चर्चा को जन्म दिया। स्कूलों में सामाजिक विज्ञान पढ़ाने के बारे में इसके कई सुझावों में, एक टिप्पणी अर्थशास्त्र के लिए विशेष रूप से रोचक है:

"सामाजिक विज्ञान के पाठ्यक्रम में अभी तक विकास-सम्बन्धी मुद्दों पर ज़ोर दिया जाता रहा है। सामाजिक विज्ञान के शिक्षण को इस 'विकास' में योगदान देने में व्यक्ति की भूमिका से जोड़ा गया है। ये महत्वपूर्ण हैं पर निष्पक्षता, न्याय, और समाज तथा राज्यव्यवस्था में गरिमा जैसे मुद्दों के मूल्यात्मक आयाम को समझने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। इस अन्तर को देखते हुए, हमें अपना ध्यान उपयोगितावाद से आगे बढ़कर समतावाद पर केन्द्रित करने की ज़रूरत है, जो इन मूल्यात्मक चिन्ताओं का समाधान करेगी।" (एन.सी.ई.आर.टी., (2006 सी)पृ. 3)

हालाँकि स्कूलों में अर्थशास्त्र के भारतीय आर्थिक विकास के मुद्दे पर केन्द्रित पाठ्यक्रमों का लक्ष्य केवल अर्थशास्त्र तक ही सीमित नहीं होता, परन्तु इसी कारण से वे इस आलोचना के लिए पर्याप्त आधार प्रदान करते हैं।

स्कूल स्तर के अर्थशास्त्र की संक्षिप्त पृष्ठभूमि की तरह, माध्यमिक (कक्षाएँ 9 से 10) तथा उच्चतर माध्यमिक (कक्षाएँ 11 से 12) स्तर के अर्थशास्त्र के पाठ्यक्रमों ने भारतीय आर्थिक विकास पर ध्यान केन्द्रित करते हुए अपनी स्वयं की रूपरेखाएँ विकसित कर ली हैं, जो अमेरिका की नैशनल काउंसिल ऑफ इकॉनोमिक ऐजुकेशन के उद्देश्यों और उसके द्वारा उपयोग की गई, और संसार के अनेक अन्य देशों द्वारा अपनाई गई, रूपरेखा से भिन्न है। माध्यमिक स्तर पर प्रस्तुत की गई पहली पाठ्यपुस्तक ने अपने अनिवार्य प्रयोजन को इस तरह पेश किया, "अर्थशास्त्र के बारे में ज्ञान को पहचानने और उसका उपयोग करने की बुनियादी योग्यता इतनी अधिक महत्वपूर्ण बन गई है कि उसे केवल पेशेवर अर्थशास्त्रियों के भरोसे नहीं

छोड़ा जा सकता" और इसलिए उसका कार्य "भारतीय अर्थव्यवस्था के ढाँचे तथा विकास से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं और मुद्दों का ज्ञान तथा समझ प्रदान करना" था।

जहाँ अमूर्त आर्थिक अवधारणाओं की बजाय भारतीय स्थितियों और भारत के आर्थिक विकास को समझने के प्रयासों पर ध्यान केन्द्रित करना एक उपयुक्त प्रारम्भिक बिन्दु प्रतीत होता है, वहीं विकास के बारे में जिस दृष्टिकोण को इन पाठ्यपुस्तकों ने मज़बूत बनाने की कोशिश की उसकी ज़्यादातर कोई जाँच-पड़ताल नहीं की गई है। शैक्षणिक मुद्दों के प्रति पेशेवर अर्थशास्त्रियों की उदासीनता के परिणामस्वरूप स्कूल स्तर के अर्थशास्त्र के बारे में बीते वर्षों में बहुत थोड़ा शोध कार्य होता हुआ दिखाई दिया। पाठ्यपुस्तकों में यथास्थिति बनाए रखने के लिए आम तौर पर देखी जाने वाली जड़ता के चलते, बदलते हुए आर्थिक वातावरण के दबावों को समाहित करने के लिए पाठ्यपुस्तकें अपने परवर्ती संस्करणों में आकार में तो बड़ी होती गईं, पर उनकी संरचना के आधार विचारों की कोई पड़ताल नहीं की गई। इसलिए यह कोई अचरज की बात नहीं कि इन पुस्तकों में की गई विकास की व्याख्या (मानवीय विकास के ऐवज में आर्थिक वृद्धि को उसके सर्वोत्तम एवजी विकल्प की तरह स्थापित करना) को ऐसे संकुचित और उपयोगितावादी दृष्टिकोण की तरह देखा गया जो 1960 के दशक के विकासवादी अर्थशास्त्र की याद दिलाता था।

प्रस्तुत शोधपत्र स्कूलों में आजकल पढ़ाए जा रहे अर्थशास्त्र की प्रकृति की जाँच-पड़ताल करने के द्वारा इस आलोचना का समाधान करने का प्रयास करता है। शोधकार्य सघन रूप से एक विशेष विचार-सूत्र की पड़ताल पर केन्द्रित है: विषय का गरीबी से सम्बन्धित अंश जिसमें समानता, न्याय और गरिमा आदि के मूल्यात्मक आयाम का एकीकरण किए जाने की अपेक्षा बहुत स्वाभाविक रूप से की जा सकती है। इस शोध का उद्देश्य उस चश्मे की जाँच करना जिसके माध्यम से विकास के मुद्दों को विद्यार्थियों के लिए प्रस्तुत किया जाता है, और इस प्रकार प्रस्तुत की गई व्याख्या की भी ज्ञानशास्त्रीय तथा शैक्षणिक प्रासंगिकता की दृष्टि से पड़ताल करना है।

गरीबी के बारे में अध्यायों की समीक्षा (खण्ड-2) से आरम्भ करने के बाद, शोध का मुख्य भाग स्कूलों में किए गए फील्डवर्क पर केन्द्रित है जिसमें कक्षाओं में किए गए अवलोकन तथा सीधे विद्यार्थियों के साथ बातचीत (खण्ड-3) शामिल है। पाठ्यसामग्री - जिसमें गरीबी रेखा, गरीबी का मापन, और गरीबी के अनुपातों पर आधारित गरीबी की वस्तुपरक तुलनाएँ शामिल हैं - का विश्लेषण प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण पर अत्यधिक ज़ोर दिए जाने की पुष्टि करता है। विकास सम्बन्धी साहित्य

में, गरीबी रेखा पर आधारित संकुचित दृष्टिकोण को सशक्त दार्शनिक और ज्ञानशास्त्रीय बुनियाद वाले अधिक सर्वांगीण तथा खुले दृष्टिकोणों के द्वारा चुनौती दी गई है। नीति निर्माण के दायरों में, गरीबी रेखा वाली दृष्टि लम्बे समय से प्रभावी रही है, लेकिन वहाँ भी वह बहसों तथा विवादों में घिरी रही है। स्कूलों में गरीबी पर होने वाली चर्चा, उसके अवधारणात्मक पहलुओं की समस्यायों पर गौर किए बगैर, इसी संकुचित गरीबी रेखा वाले दृष्टिकोण पर बहुत अधिक निर्भर करती है। इस तथ्य के अलावा कि ऐसा करना विषय के प्रति ईमानदार रवैया नहीं दर्शाता, शैक्षणिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए भी प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण में गम्भीर कमियाँ हैं, विशेष रूप से उन सन्दर्भों में जिनमें इस विषय के बारे में विद्यार्थियों तथा शिक्षकों, दोनों के सांस्कृतिक रूप से निर्मित अपनी-अपनी पूर्व धारणाएँ हैं। यह संकुचित निर्धारणात्मक रवैया जिस प्रकार के दृष्टिकोण को इजाज़त देता है और उसका प्रसार करता है, वह विविध प्रकार के प्रमाणों में मुखर रूप से स्पष्ट है, और वह विद्यार्थियों की व्याख्याओं के माध्यम से सबसे अधिक व्यक्त होता है। इसमें लोगों को ज़्यादातर आर्थिक गतिविधि के साधन की तरह देखा जाता है, और गरीबों की आम छवि अज्ञानी, आलसी और विकास के निम्न स्तरों के लिए ज़िम्मेदार लोगों के रूप में चित्रित की जाती है, ये वे धारणाएँ हैं जिन्हें इन पुस्तकों का आधार-ढाँचा चुनौती देने की बजाय उनका पोषण करता है। इसलिए एक समीक्षात्मक और सर्वांगीण ढाँचे की ज़रूरत पर जितना भी ज़ोर दिया जाए वह अधिक नहीं हो सकता। खण्ड-4 थोड़े विस्तार के साथ एक वैकल्पिक ढाँचे के प्रमुख तत्वों की चर्चा करता है, जिसमें इस विषय पर हुए बहुविषयक शोध तथा कार्यविधियों से काफी सहायता ली गई है। यह तर्क दिया गया है कि वैकल्पिक ढाँचा अनिवार्य रूप से ऐसा हो जोः

1. मूल्यात्मक आवश्यकताओं को अपने में एकीकृत करे।
2. चेतन रूप से समाजीकरण को बढ़ावा दे।
3. जीवन्त नीति सम्बन्धी ऐसी बहसों को शामिल करे जो अनेक दृष्टिकोणों को इस तरह अपनाए कि जिससे विकास की नीति एक विवादित क्षेत्र की तरह उभर कर सामने आए।

गरीबी रेखाः कितनी प्रासंगिक?

नीचे दी गई समीक्षा कक्षा-9 तथा 11 के लिए एन.सी.ई.आर.टी. की अर्थशास्त्र की मौजूदा पाठ्यपुस्तकों पर आधारित है। ये किताबें सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ सेकेण्डरी ऐजुकेशन (सी.बी.एस.ई.) के, तथा कुछ उप-राष्ट्रीय बोर्डों के अन्तर्गत आने वाले सभी स्कूलों के लिए निर्धारित की गई अधिकारिक पाठ्यपुस्तकें हैं। ये निजी पाठ्यपुस्तकों के लेखकों के लिए भी

नमूने की तरह काम करती हैं। एक विषय सूत्र के रूप में गरीबी का विवेचन कक्षा-9 की किताब में (एन.सी.ई.आर.टी., 2006 ए) तथा फिर कक्षा-11 की किताब में (एन.सी.ई.आर.टी., 2006 बी) किया गया है। आम तौर पर दोनों कक्षाओं में विषय के विवेचन में समानता है और उसमें चार व्यापक क्षेत्रों को शामिल किया गया है:

1. गरीबी क्या है और कौन गरीब हैं?
2. गरीबी का मापन और गरीबों की संख्या
3. गरीबी के कारण
4. गरीबी-विरोधी उपाय तथा कार्यक्रम

पहली बार पढ़ने में ही, हमें पाठ्यपुस्तक में प्रारम्भ में प्रस्तुत किए गए गरीबी के यथार्थवादी चित्रों और पाठ्यांशों में छाए हुए गरीबी रेखा के अवधारणात्मक विचार के बीच में विसंगति का तीखा एहसास होता है। पुस्तक के अध्याय गरीबों के जीवन से लिए गए उदाहरणों के अध्ययनों से आरम्भ होते हैं।

एन.सी.ई.आर.टी. (2006 ए) में दिए गए मामले ग्रामीण गरीबी के सापेक्ष शहरी गरीबी के विशिष्ट अन्तर का चित्र पेश करते हैं, जबकि एन.सी.ई.आर.टी. (2006 बी) में गरीबों की ज़िन्दगियों की तुलना गैर-गरीबों की ज़िन्दगियों से की गई है। इन चित्रणों को बॉक्सों में 'सामाजिक बहिष्करण', 'असुरक्षा' तथा 'गरीबी क्या है' पर दिए गए विद्वत्ता-पूर्ण उद्धरणों की सामग्री के साथ प्रस्तुत किया गया है। परन्तु, अध्याय का अधिकांश हिस्सा गरीबी को नापने के लिए पैमाने के रूप में गरीबी-रेखा के विस्तृत विवरण को समर्पित है। एन.सी.ई.आर.टी. (2006 ए) की पुस्तक 11 पृष्ठों में से, थोड़े नहीं बल्कि 6 पृष्ठ गरीबी रेखा, गरीबी के अनुमान, असुरक्षित समूहों के गरीबी अनुपातों, अन्तर-राज्यीय असमानताओं तथा वैश्विक गरीबी के परिदृश्य की चर्चा करने में लगाती है, और यह पूरी चर्चा आमदनी की गरीबी और गरीबी रेखाओं के सन्दर्भ के भीतर होती है। हालाँकि एन.सी.ई.आर.टी. (2006 बी) की पुस्तक कुछ हद तक अधिक सन्तुलित है, पर उसमें भी पाठ्यांशों में गरीबी की चर्चाओं के केन्द्र में गरीबी रेखा की अवधारणा है।

अर्थशास्त्र में यह तथ्य सर्वविदित है कि कार्यप्रणाली तथा अर्थ, दोनों दृष्टियों से गरीबी रेखा की धारणा में गम्भीर समस्याएँ हैं। भारत में वर्तमान में गरीबी का आकलन एक विभेदपूर्ण कैलोरी-मानदण्ड के आधार पर एक गरीबी की रेखा को निश्चित करने के द्वारा किया जाता है। योजना आयोग के एक कार्य दल ने 1979 में गरीबी रेखा को उस प्रति व्यक्ति व्यय-स्तर के रूप में परिभाषित किया जिस पर प्रति दिन प्रति व्यक्ति लिया गया

कैलोरी पोषण ग्रामीण क्षेत्रों में 2400 कैलोरी और शहरी क्षेत्रों में 2100 कैलोरी था। प्रत्येक राज्य में आबादी के जिस समूह के द्वारा प्रति व्यक्ति प्रति दिन कैलोरियों की इतनी मात्रा का नैशनल सैम्पल सर्वे ऑर्गेनाइज़ेशन (राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन - एनएसएसओ) के 1973 से 1974 तक के सर्वेक्षण के अनुसार - उपभोग किया गया, उनके द्वारा इसके लिए प्रति दिन प्रति व्यक्ति खर्च की गई औसत राशियों को गरीबी रेखाओं की तरह इस्तेमाल किया गया। उपभोक्ताओं के व्यवहार के 1973 से 1974 तक के अवलोकनों के आधार पर प्राप्त की गईं गरीबी रेखाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में 49.09 रु. प्रति व्यक्ति प्रति माह, और शहरी क्षेत्रों में 56.64 रु. प्रति व्यक्ति प्रति माह थीं। बाद के वर्षों में इन गरीबी रेखाओं को महज़ उपभोक्ता मूल्य सूचकांकों (कंज़्यूमर प्राइस इंडिसीज़) में हुए परिवर्तनों के आधार पर संशोधित करके अद्यतन बनाया जाता रहा। ये आधिकारिक गरीबी रेखाएँ, जैसा कि भली भाँति जाना-माना तथ्य है, एकदम विपन्नता के स्तरों के करीब हैं। इन गरीबी रेखाओं से प्राप्त किए गए गरीबी के आकलित अनुमानों से अन्य सर्वेक्षणों द्वारा प्रदान किए गए पोषण के आँकड़ों के आधार पर आकलित अनुमानों में भारी अन्तर हैं। पटनायक (2004, 2007) ने प्रमाण सहित तर्क दिया है कि 1973 से 1974 की गरीबी रेखाओं का मुद्रास्फीति के लिए समायोजन करने की बजाय, सही पद्धति यह जाँच करने की होना चाहिए कि क्या इस प्रकार प्राप्त की गई गरीबी रेखाएँ अभी भी पोषण के मानकों को पूरा करने की गुंजाइश देती हैं। 2005 तक, एक ग्रामीण व्यक्ति को 2,200 कैलोरी (एनएसएसओ आँकडे) प्राप्त करने के लिए प्रति दिन 19 रु. की ज़रूरत होती थी, जबकि 12 रु. की आधिकारिक अनुमानित राशि में वह केवल 1,800 कैलोरी प्राप्त कर सकता था। इस प्रकार गरीबी रेखाओं तथा आहरित कैलोरी पोषण के मूल आदर्श मानदण्ड के बीच में चौड़ी खाई है।

एक अन्य समस्या यह है कि व्यक्ति गणना अनुपात इस तथ्य की उपेक्षा कर देता है कि व्यक्ति इस रेखा से थोड़ा-सा नीचे या बहुत नीचे हो सकते हैं; और यह भी कि खुद गरीब लोगों के भीतर भी आमदनी का वितरण बहुत असमान हो सकता है। सेठ इसे सार रूप में इस तरह कहते हैं कि "गरीबी रेखा की अत्यधिक मनमानी और अवरोधक प्रकृति....बहुत-सी गरीबी को अदृश्य बना देती है, गरीबी की समझ को विकृत कर देती है और इस तरह गरीबी को घटाने के उद्देश्य को हानि पहुँचाती है।"

यह अपेक्षा करना स्वाभाविक है कि इन मुद्दों को गरीबी रेखा की चर्चा में समाहित किया जाएगा।

ज़्यादा महत्वपूर्ण बात गरीबी को नापने के लिए स्वयं आमदनी के दायरे की प्रासंगिकता पर सवाल खड़े करना

है। जो उपभोक्ता वस्तुएँ व्यक्ति के अधिकार में होती हैं वे केवल एक साध्य का साधन होती हैं, और वह साध्य जिस तरह के जीवन की व्यक्ति कदर करता है उस तरह का जीवन जीने में समर्थ होना है। भिन्न-भिन्न लोगों तथा समाजों की आमदनी और उपभोग की वस्तुओं को मूल्यवान उपलब्धियों में परिवर्तित करने की उनकी क्षमता आम तौर पर अलग-अलग होती है, उदाहरण के लिए, गर्भवती महिलाओं की विपन्नता बढ़ जाती है क्योंकि उनके लिए रोज़गार को बनाए रखना ज़्यादा कठिन हो जाता है जबकि भोजन की उनकी ज़रूरत तुलनात्मक रूप से अधिक होती है। एक अर्थपूर्ण अवधारणात्मक ढाँचे को इन व्यक्तिपरक समस्याओं का समाधान करना चाहिए। इसलिए हम मूल्यांकन के मापदण्ड की तरह सिर्फ एक गरीबी रेखा को कैसे पर्याप्त मान सकते हैं? हम उसे कहाँ निर्धारित करेंगे?

इसके अलावा, हालाँकि हो सकता है कि हम चुनौतियों से पार पाने के लिए एक साधन के रूप में वास्तविक आय के महत्व को स्वीकार करते हों, परन्तु फिर भी यह तो ज़ाहिर है कि जो व्यक्ति अपराधों और बीमारियों के खतरों से बचने के लिए पैसा खर्च करता है, उसकी स्थिति ऐसे व्यक्ति की तुलना में कम अच्छी होती है जिसे अच्छी सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं और सुरक्षा का लाभ मिलता है, और इसलिए जिसे ऐसे खर्चों की कोई ज़रूरत नहीं होती। इसलिए, कामकाज की विशेषताओं का दृष्टिकोण, बस केवल निजी श्रम तथा बाज़ार को ही

नहीं, बल्कि सार्वजनिक सेवाओं के ऐसे लाभों को भी इस हिसाब में शामिल करता है। व्यक्तियों की क्षमताओं वाली पद्धति, जो कामकाज की विशेषताओं के आधार पर विकसित की गई, ने गरीबी की अवधारणा निर्मित करने की प्रक्रिया को, तथा विकास के अधिक व्यापक विमर्श को रूपान्तरित कर दिया है। किसी व्यक्ति की 'क्षमता' का तात्पर्य कामकाज के ऐसे वैकल्पिक संयोजनों से होता है जिन्हें हासिल करना उस व्यक्ति के लिए व्यवहारिक रूप से सम्भव होता है। इस तरह क्षमता एक प्रकार की स्वतंत्रता है; वैकल्पिक कामकाजी संयोजनों को हासिल करने के लिए वास्तविक अर्थपूर्ण स्वतंत्रता (सेन, 1999)। गरीबी में जो बुनियादी विफलता निहित होती है वह व्यक्ति के पास न्यूनतम पर्याप्त बुनियादी क्षमताओं का न होना है। जो गरीबी रेखा गरीबी की इस अपरिहार्य रूप से बहुआयामी प्रकृति तथा व्यक्तिगत विशेषताओं की उपेक्षा करती है, वह गरीबी से सम्बन्धित चिन्ताओं के प्रति वास्तविक न्याय नहीं कर सकती।

यह सच है कि क्षमता की पद्धति पर आधारित विपन्नता की व्यापक धारणा को सटीक परिभाषा में बाँधना, और किसी आधारभूत पैमाने से उसको नापना उस तरह आसान नहीं है जैसा कि आमदनी पर आधारित गरीबी रेखा के साथ है। परन्तु, एक अवधारणात्मक श्रेणी के रूप में यह मूल्यगत आधार-मान्यताओं और गरीबी की वास्तविक तस्वीर को समझने के चश्मे, दोनों दृष्टियों से गरीबी के विचार को एक अधिक अर्थपूर्ण स्तर तक विस्तृत कर देती है। तब फिर स्कूलों में गरीबी रेखाओं की जगह क्षमता वाली पद्धति ने क्यों नहीं ली है? राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के द्वारा स्पष्ट शब्दों में विकास के ढाँचे की समस्याओं को व्यक्त किए जाने के बाद भी, इन नई लिखी गई पाठ्यपुस्तकों में कोई खास वास्तविक बदलाव नहीं दिखाई देता। अन्य लोगों के अलावा, ऐपल (2000) ने आधिकारिक ज्ञान के चुनाव के बारे में, तथा एक लोकतांत्रिक पाठ्यक्रम को शिक्षा व्यवस्था में लाना कितना कठिन है, इसके बारे में विस्तार से लिखा है। गरीबी रेखा की पद्धति की गम्भीर समस्याओं के बावजूद, अभी भी रूढ़िवादी नीति निर्माता जमातों में इसका उपयोग जारी है, और यह लक्ष्य-आधारित व्यय कार्यक्रमों की कसौटी बनी हुई है। जो कुछ भी पढ़ाया जाता है वह कतई मूल्य-निरपेक्ष नहीं होता, और शायद यह अपरिहार्य है कि जो ढाँचे अन्तर्निहित व्यक्तिपरक धारणाओं और सुविधासम्पन्न लोगों की खुशहाली की पड़ताल करते हैं, उन्हें सबसे कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ेगा।

हकीकत यह भी है कि कैलोरी वाले मानदण्डों, उपभोग के खर्चों तथा आमदनी के पैमाने – जिनमें से अधिकांश बातें न तो शिक्षकों और न ही विद्यार्थियों

की पकड़ में आती हैं, पर वे उन्हें प्रभावित ज़रूर करती हैं – समेत की जाने वाली गरीबी रेखा की चर्चा गरीबी के अध्ययन को एक तरह का वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता का आवरण अवश्य प्रदान करती है। शिक्षा की मुख्यधारा के भीतर अर्थशास्त्र को ज़्यादातर एक विज्ञान के रूप में देखा जाता है, और यही वह दृष्टिकोण है जो अक्सर विद्यार्थियों के लिए चित्रित करना चाहते हैं। "हालाँकि अर्थशास्त्र को विशुद्ध विज्ञान की अर्हता प्राप्त नहीं है, पर विडम्बना यह है कि यह वैज्ञानिक पद्धति का, और मिथ्या ठहराए जाने की कसौटी – जिस रूप में कह सकते हैं कि उसे कार्ल पॉपर ने परिभाषित किया था जिनके वस्तुनिष्ठ ज्ञान का सूत्र अर्थशास्त्रियों द्वारा अपनी कार्यप्रणाली में उपयोग किया जाता है – का अवश्य ही पालन करता है" चन्दावरकर, (2007)। अन्य बातों के साथ-साथ, इसके परिणामस्वरूप यथार्थवाद और प्रासंगिकता के विपरीत भविष्यसूचक अर्थशास्त्र और तकनीकी प्रवीणता को अत्यधिक महत्व प्राप्त हो गया है। अपने स्वयं के दायरे में "विवरणात्मक अर्थशास्त्र को भविष्यसूचक अर्थशास्त्र के साम्राज्यवाद का खामियाज़ा भुगतना पड़ा है" (सेन, 1980)। किसी हद तक यह तथ्य अर्थशास्त्र की आम प्रवृत्ति को प्रतिबिम्बित करता है कि स्कूलों की पाठ्यपुस्तकें गरीबी के नैतिक और समतावादी पहलुओं की अनदेखी करती हुई निरन्तर मापन के प्रश्नों में संलग्न दिखाई देती हैं।

गरीबी रेखा के ढाँचे के भीतर, यह अपरिहार्य है कि गरीबी की व्याख्याएँ सीमित दायरे में बँधी होंगी; "आर्थिक प्रगति को बढ़ावा देना तथा आबादी पर नियंत्रण, इन दोनों मोर्चों पर विफलता" और साथ ही "पर्याप्त रोज़गार उत्पादन का अभाव, भूमि और अन्य संसाधनों का असमान वितरण, तथा सामाजिक-सांस्कृतिक कारक, जैसे कि सामाजिक दायित्वों तथा धार्मिक अनुष्ठानों पर बहुत गरीब लोगों के द्वारा भी फिज़ूलखर्ची किया जाना" इनका ही हवाला देते हुए पाठ्यपुस्तक में गरीबी को समझाया जाता है [एन.सी.ई.आर.टी., (2006 ए), पृ. 38]। इसमें गरीबी की पारम्परिक छवियाँ स्पष्ट दिखती हैं, और उतना ही ज़ाहिर अन्तर्निहित नियतिवाद भी है। आनुभविक रूप से, आर्थिक उन्नति और गरीबी के घटने का सम्बन्ध एक अनिर्णीत मुद्दा है। जहाँ आर्थिक उन्नति गरीबी के घटाने में सहायक हुई है, वहाँ इसका कारण यह है कि उन देशों ने प्रगति के लाभों का उपयोग भोजन, स्वास्थ्य सेवाओं, सभी के लिए प्राथमिक शिक्षा के अधिकारों को विस्तृत बनाने के लिए, या जिसे प्रगति के माध्यम से पाई गई सुरक्षा कहा है उसे उपलब्ध कराने के लिए किया है (द्रेज़ एवं सेन, 1989)। इसके अलावा, बड़ी संख्या में ऐसे उदाहरण मौजूद हैं जहाँ आर्थिक उन्नति के द्वारा प्रति व्यक्ति आमदनियों

को बढ़ाने का इन्तज़ार किए बगैर, प्रत्यक्ष सार्वजनिक सहायता देना गरीबी घटाने के लिए ज़िम्मेदार साबित हुआ, उदाहरण के लिए जैसा चीन, क्यूबा, चिली, जमैका, कोस्टा रीका तथा भारत के केरल में हुआ। आर्थिक प्रगति और गरीबी के जटिल सम्बन्ध को समझाने वाली बारीक विभेदों से युक्त ऐसी चर्चा के बिना किया जाने वाला विश्लेषण नियतिवादी होता है।

गरीबी के लिए ज़िम्मेदार एक कारक के रूप में जनसंख्या पर ज़ोर देना माल्थूसियन सोच को परिलक्षित करता है जो जनसंख्या की ताकत को उसके निर्वाह के लिए पर्याप्त उत्पादन करने की धरती की शक्ति से अधिक मानती है। हकीकत में, जनसंख्या वृद्धि के प्रभाव को कम करने वाले कारकों, जैसे कि प्रौद्योगिक आविष्कारों, उत्पादन की बढ़तों, सामाजिक संगठन में हुए परिवर्तनों तथा सरकारी नीतियों में हुए बदलावों, आदि ने यह सुनिश्चित कर दिया कि माल्थूस की भविष्यवाणियाँ कभी घटित न हों। पर फिर भी, माल्थूस का प्रभाव कुछ अकादमिक जमातों और समाज के भीतर बहुत प्रचलित विमर्शों, दोनों में बाकायदा जारी है।

इन अध्यायों के अन्तिम भागों में सरकार के लक्ष्य-आधारित गरीबी-विरोधी कार्यक्रमों, जिनमें स्व-रोज़गार तथा मेहनताने वाला रोज़गार शामिल हैं, की चर्चा की गई है, जिसका अतिशय

महत्व ज़रूर है, पर निश्चित ही वही सब कुछ नहीं है। एन.सी.ई.आर.टी. की पुस्तक (2006 बी) में एक उल्लेख मिलता है कि गरीबी को समझने का एक अन्य दृष्टिकोण हो सकता है, "गरीबी के बारे में एक तीसरा दृष्टिकोण लोगों को न्यूनतम बुनियादी सुविधाएँ प्रदान करना है।" फिर आत्म-प्रशंसा के स्वर में पाठ आगे कहता है कि:

"भारत संसार के उन पथ प्रवर्तक देशों में था जिन्होंने विचार किया कि सामाजिक उपभोग की ज़रूरतों – रियायती दरों पर खाद्यान्न का प्रावधान, शिक्षा, स्वास्थ्य, पानी की आपूर्ति तथा सफाई व्यवस्था – के लिए सार्वजनिक व्यय के द्वारा लोगों के जीवन स्तरों को सुधारा जा सकता था। ....यहाँ संक्षेप में यह कहना ज़रूरी है कि अनेक दृष्टियों से भारत ने इसमें सन्तोषजनक प्रगति हासिल की है" (पृ. 74)।

बुनियादी सुविधाओं तथा सार्वजनिक व्यय के सरसरी तौर पर किए गए ज़िक्र और भारत के इस सन्दर्भ में सफलता हासिल करने के बारे में दिए गए बहुत ही विवादास्पद वक्तव्य का मतलब है कि ये महत्वपूर्ण आयाम पूरी तरह से उपेक्षित रहेंगे और गलत समझे जाएँगे जैसा कि खण्ड-3 में कक्षा के क्रियाकलापों के विवरण से प्रगट होता है।

कक्षा के भीतर की दृष्टिः विकास के लिए चुनौती के रूप में गरीबी

इस अध्ययन का क्षेत्र कार्य 2008 से 2009 के अकादमिक सत्र में दिल्ली के दो केन्द्रीय विद्यालयों एस-1 तथा एस-2 में किया गया था। केन्द्रीय विद्यालय अपेक्षाकृत बेहतर ढंग से संचालित होने वाले सरकारी स्कूलों में होते हैं जिनमें प्रशिक्षित शिक्षकों द्वारा नियमित शिक्षण होता है और

जिनमें समुचित गुणवत्ता वाली बुनियादी सुविधाएँ होती हैं। इन स्कूलों के विद्यार्थी समूह में काफी सामाजिक-आर्थिक विविधता होती है।

वे शिक्षिका भूगोल में प्रशिक्षित थीं और वे एस-1 की कक्षा-9 के विद्यार्थियों को सामाजिक विज्ञान पढ़ाती थीं। जब उन्होंने संक्षेप में गरीबी पर दिए गए पाठ को दोहराया तो कक्षा में तनाव-रहित माहौल था। उन्होंने अलग-अलग मापों की तरह पहले आमदनी की गरीबी रेखा की और फिर उपभोग की गरीबी रेखा की बात की, बिना यह जाने कि इस पद्धति में कैलोरी के मानदण्डों को कहाँ रखा जाए। पाठ्यपुस्तक में दिए गए शिवरामन और उसके परिवार के उदाहरण के अध्ययन [एन.सी.ई.आर.टी., (2006 ए), पृ. 34] का हवाला देते हुए यह बताया गया कि गरीबों की पहचान करने के लिए इस पद्धति का उपयोग कैसे किया जाता है। परन्तु, जैसा कि शिक्षिका ने सही बताया, रोज़गार की अनिश्चितता तथा उसके ऋतुओं पर निर्भर रहने के कारण चूँकि आय की जानकारी अधूरी थी, इसलिए यह अभ्यास अधूरा ही रहा।

शिवरामन की कहानी परिवारों के बीच की असमानता, शिक्षा के अधिकारों और भोजन के वितरण में नारी-विरोधी पक्षपात को चित्रित करती है। शिक्षिका ने सरसरी तौर पर इन पूर्वाग्रहों की बात की और फिर चर्चा को मानव संसाधनों की ओर ले गईं। उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि लड़कियों की शिक्षा के अभाव के कारण मानव संसाधनों का कम उपयोग हो रहा था और वह 'देश के विकास' को प्रभावित कर रहा था।

बच्चों को शिक्षा देने/न देने के निर्णय की ज़िम्मेदारी ढाँचागत कारकों की बजाय पूरी तरह से शिवरामन के ऊपर रख दी जाने से, गरीबों के लक्षण, जैसे कि लड़कियों को स्कूल न भेजने की प्रवृत्ति, गरीबी को समझाने के लिए पर्याप्त हो सकते हैं। शिक्षिका के गरीबी के आँकड़ों को पढ़ाना उसी दिशा की ओर इशारा करता हुआ प्रतीत हुआ। तालिका-1 भारत में गरीबी के अनुमानों को प्रस्तुत करती है। इसके अनुसार 1973 से 1974 तथा 1993 से 1994 के बीच के अन्तराल में गरीबी के अनुपातों में उल्लेखनीय गिरावट आई, फिर भी, शिक्षिका ने ध्यान दिलाया कि देश में गरीबों की संख्या उतनी ही रही। उन्होंने समझाया कि इस पहेली का उत्तर जनसंख्या की उच्च वृद्धि दर में निहित है, और कहा कि 'जनसंख्या सभी बुराइयों की माँ है'। गरीबी किस कारण से पैदा होती है, इस सवाल की चर्चा में जनसंख्या वृद्धि की नकारात्मक भूमिका फिर से दोहराई गई। कारणों की सूची में जनसंख्या सबसे ऊपर थी, जिसके बाद निरक्षरता, और बेरोज़गारी का ज़िक्र था।

गरीबी के ऊपर बताए गए सभी कारण बृहत-स्तर के कारक प्रतीत होते

हैं। परन्तु फिर भी, कक्षा की पढ़ाई के अनुसार ये और कुछ नहीं बल्कि गरीबों के लक्षण हैं! जनसंख्या गरीबों की बड़े परिवार रखने की प्रवृत्ति का परिणाम है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि निरक्षरता उन प्रवृत्तियों का परिणाम है जो गरीबों को अपने बच्चों को स्कूल भेजने से रोकती हैं। इसमें ढाँचागत कारकों का कोई उल्लेख नहीं था। आर्थिक प्रगति के बारे में इसमें एक भी बात नहीं थी, जिस पर पाठ्यपुस्तक में गरीबी का मुख्य कारण बताते हुए ज़ोर दिया गया था। चूँकि शिक्षिका की सहज समझ में निम्न-स्तरीय मानवीय पूँजी निर्माण के कारण गरीबी की निम्न-स्तरीय प्रगति के लिए ज़िम्मेदार होने की बात बैठी हुई थी, इसलिए चेतन/अचेतन रूप से उन्होंने विपरीत दिशा में कारणगत सम्बन्ध को नज़रअन्दाज़ कर दिया था।

यह हमें मिल्टन फ्रीडमैन (1953) की एक अन्तर्दृष्टि की याद दिलाता है, "साधारण जन और विशेषज्ञ, दोनों को ही मज़बूती से पकड़ी हुई मानदण्डात्मक पूर्वधारणाओं के अनुकूल सकारात्मक निष्कर्ष निकालने का, और यदि उनके मानदण्डात्मक निहितार्थ अरुचिकर हों तो वैसे सकारात्मक निष्कर्षों को नकारने का, प्रलोभन अपरिहार्य रूप से होता है"। विषयसूत्र के रूप में गरीबी में अनेकों ऐसी पूर्व-धारणाएँ और रूढ़िवादी छवियाँ निहित रहती हैं जिनका समझ के अनुशासित स्वरूपों से तालमेल नहीं बैठता। ये पूर्व-धारणाएँ अक्सर बहुत हठी होती हैं और उनको बदलने के लिए उन पर बार-बार प्रश्न खड़े करने और ठोस तर्क प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। हम इस मुद्दे पर खण्ड-4 में वापिस लौटेंगे।

एक अन्य भ्रामक नासमझी गरीबों की अस्वास्थ्यकर और अस्वच्छ जीवन स्थितियों की चर्चा में उभर कर सामने आई। साफ-सफाई तथा साफ पीने के

तालिका 1 - भारत में गरीबी के अनुमान

वर्ष	गरीबी का अनुपात (%)			गरीबों की संख्या (करोड़ में)		
	ग्रामीण	शहरी	योग	ग्रामीण	शहरी	योग
1973 - 1974	56.4	49.0	54.9	26.1	6.0	32.1
1993 - 1994	37.3	32.4	36.0	24.4	7.6	32.0
1999 - 2000	27.1	23.6	23.1	19.3	6.7	26.0

स्रोतः एन.सी.ई.आर.टी. की पुस्तक (2006 ए, पृ. 33) से ली गई तालिका, आर्थिक सर्वेक्षण 2002-2003, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार

पानी का अभाव, अस्वच्छ जीवन स्थितियाँ, स्वास्थ्य सेवाओं का न होना – इन सबकी चर्चा गरीबी के परिणामों के रूप में की गई। गरीबी को सिर्फ निम्न स्तर की आय के एक-आयामी रूप में नापे जाने की वजह से, विपन्नता के अन्य प्रकार भी गरीबी के कारण की उपज मान लिए गए। विपन्नता के निवारण के लिए सार्वजनिक व्यय और सार्वजनिक सहारे पर एक चर्चा, जो इस अध्याय से पूरी तरह गायब है, ने यहाँ छिपे हुए कारण-परिणाम सम्बन्ध के आशय को स्पष्ट करके तोड़ दिया होता। क्योंकि स्वास्थ्य, स्कूली शिक्षा, पीने के पानी, सफाई की समुचित सुविधाओं के सार्वजनिक प्रावधान के बिना उचित समझी जाने लायक आय भी नाकाफी होगी।

कक्षा में दिया गया कार्यः गरीबी को समझना महत्वपूर्ण क्यों है?

विज्ञान, वाणिज्य तथा मानविकी विषय धाराओं की कक्षा-11 के विद्यार्थियों के मिले-जुले समूह के साथ बातचीत में विद्यार्थियों के सामने यह प्रश्न रखा गयाः गरीबी को क्यों घटाया जाना चाहिए? यह सवाल पूछने के पीछे हमारा उद्देश्य उस चश्मे की एक समझ हासिल करना था जिससे विद्यार्थी गरीबी को देखते हैं।

1. अधिकांश उत्तरों का आशय था कि गरीबी देश के विकास में बड़ी बाधा थी। "गरीबी को कम किया जाना चाहिए क्योंकि यह हमारे देश के पिछड़ेपन का मुख्य कारण है। इसे बेहतर जीवन स्तरों को हासिल करने के लिए कम किया जाना चाहिए" (कक्षा-11, वाणिज्य का विद्यार्थी)। एक अन्य विद्यार्थी कहता है कि "भारत के विकास को बढ़ाने के लिए और हमारी मानवीय पूँजी को सशक्त बनाने के लिए गरीबी को घटाया जाना चाहिए। गरीबी हमारे देश की वृद्धि की राह में बड़ी रुकावट है। यदि व्यक्ति के पास किसी प्रकार के संसाधन (स्वास्थ्य, शिक्षा, आदि जैसे संसाधन) नहीं हैं तो वह उसकी अर्थव्यवस्था में योगदान देने में समर्थ नहीं होता। यही कारण है कि भारत का मुख्य कार्य गरीबी को कम करना है" (कक्षा-11, विज्ञान का विद्यार्थी)। उत्तरों में भारी बहुमत ऐसे उत्तरों का था जो वृद्धि – जिसे विकास का समानार्थी समझा जाता है – की बात भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख लक्ष्य के रूप में करते थे, और विकास के सफल यात्रा-पथ पर अग्रसर रहने के लिए मानवीय पूँजी को एक अनिवार्य रूप से आवश्यक घटक मानते थे। गरीबी का निहित अर्थ निम्न स्तर की मानवीय पूँजी का होना था, जिसे वृद्धि को अवरुद्ध करने वाली बाधा की तरह देखा जाता है।

2. कुछ ही विद्यार्थी गरीबी के अलग-अलग आयामों के बीच के सम्बन्ध को पहचान पाए, हालाँकि वे भी एक सीमित अर्थ में यह कर सकेः "गरीबी अकेली नहीं आती। यह अनेक अन्य समस्याओं, जैसे कि कुपोषण, शिक्षा के बहुत कम अवसरों, जीवन के ज़्यादा नीचे स्तरों,

आदि के साथ आती है, और फिर यह देश की अर्थव्यवस्था या देश की प्रति व्यक्ति आय को पूरी तरह प्रभावित करती है" (कक्षा-11, वाणिज्य का विद्यार्थी)।

3. इस तथ्य का मामूली बोध कि गरीबी लोगों के लिए अनिवार्य रूप से पीड़ादायक होती है, जो हमारे जैसे लोकतांत्रिक समाज के लिए अनुचित है, केवल दो उत्तरों में प्रकट होता है। बेहतर तर्कों से युक्त एक उत्तर है कि "एक देश के नागरिकों के जीवन स्तरों को ऊपर उठाने के लिए गरीबी को कम किया जाना चाहिए। यह हमारा कर्तव्य है कि ज़्यादा अच्छे जीवन स्तर के साथ जीने में उनकी सहायता करें। साथ ही, यह हम सभी को जीवन जीने के लिए एक स्वस्थ सामाजिक वातावरण प्रदान करेगा" (कक्षा-11, वाणिज्य की विद्यार्थी)। इस विद्यार्थी को गरीबी से जुड़े कष्ट का और ऐसे कष्ट को दूर करने के प्रति नागरिकों के दायित्व का ज्ञान है, एहसास है, हालाँकि वह गरीबी कम करने के पीछे की उपकरणात्मक प्रेरणा, अर्थात् एक 'स्वस्थ सामाजिक वातावरण' निर्मित करने की ज़रूरत, को भी इसमें जोड़ देती है।

4. नागरिकों की न्यूनतम बुनियादी आवश्यकताएँ पूरी हों यह सुनिश्चित करने की कोई भी सीधी ज़िम्मेदारी विद्यार्थियों ने राज्य के ऊपर नहीं डाली। राज्य की भूमिका को आर्थिक वृद्धि की आकांक्षा के सम्बन्ध में ही देखा जाता है। वास्तव में, अनेक विद्यार्थियों ने लिखने में इस आशय को व्यक्त किया है: "सरकार की अनेक नीतियाँ गरीबी के कारण बेकार हो जाती हैं, इसलिए इसे कम किया ही जाना चाहिए" (कक्षा-11, वाणिज्य का विद्यार्थी)।

5. सिर्फ एक विद्यार्थी (32 में से) ने नागरिकों की बुनियादी ज़रूरतों के सम्बन्ध में मूलभूत अधिकारों का उल्लेख किया। "किसी व्यक्ति की बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने में उसकी असमर्थता ही गरीबी है। यदि वह अपनी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा नहीं कर पाता तो वह अपना जीवन उचित ढंग से व्यतीत नहीं कर सकता। दूसरी दृष्टि से भी, अपनी बुनियादी ज़रूरतें पूरी करना हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। इसके अलावा, गरीबी एक ऐसी स्थिति है जिससे हर व्यक्ति निकलना चाहता है" (कक्षा-11, कला संकाय का विद्यार्थी)।

गरीबी की विद्यार्थियों द्वारा की गई व्याख्या में संकुचित विकासात्मक दृष्टिकोण के वर्चस्व को असंदिग्ध रूप से पहचाना जा सकता है। गरीबी और समानता के बीच का सम्बन्ध, गरीबी के मानवीय आयाम, तथा मूलभूत अधिकारों के उल्लंघन के रूप में गरीबी, ये पहलू निकलकर तो आए परन्तु उनका ज़िक्र केवल हाशिए की थोड़ी-सी आवाज़ों के द्वारा किया गया। यह केवल संयोग नहीं था कि जिस एकमात्र विद्यार्थी ने अधिकारों के दृष्टिकोण का उल्लेख किया वह

मानविकी विषयों की धारा का था। विद्यार्थियों का विशाल बहुमत गरीबी को केवल उपयोगितावाद के ढाँचे के भीतर ही देखता है।

जिन विचारों को गरीबी की प्रकृति के बारे में विद्यार्थियों की सांस्कृतिक रूप से निर्मित पूर्व-धारणाएँ कहा जा सकता है, उनमें अर्थशास्त्र के पाठ्यक्रमों ने चेतन या अचेतन रूप से अपना योगदान दिया है। अर्थशास्त्र की पाठ्यपुस्तकों में ऐसे प्रश्नों की, जैसे कि आगे दिए गए हैं, कभी भी प्रकट रूप से छानबीन नहीं की जातीः गरीबी पर विचार करना महत्वपूर्ण क्यों है? असमानता का मुद्दा महत्वपूर्ण क्यों है? क्या ये असमानताएँ सामाजिक जीवन के ऐसे स्थाई और अपरिहार्य लक्षण हैं जो मनुष्यों में प्रतिभा तथा योग्यता के अन्तरों को प्रतिबिम्बित करते हैं? या कि ये असमानताएँ हमारे सामाजिक ओहदों और अलग-अलग लोगों को उपलब्ध अवसरों के अन्तरों का परिणाम हैं? तथा, हमें किस प्रकार की अर्थव्यवस्था की तलाश है? मानवीय गरिमा, सामाजिक न्याय तथा समानता जैसे प्रमुख विचारों का कतई कोई उल्लेख किए बगैर गरीबी पर एक समूचे अध्याय का लिखा जाना यहाँ पूरी तरह से स्वीकार्य है।

(...जारी)

सुकन्या बोसः नैशनल इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक फाइनैन्स एंड पॉलिसी, नई दिल्ली में कार्यरत। इनकी शोध रुचियों में विकास, शिक्षा और वृहत् अर्थशास्त्र जैसे विषय शामिल हैं। **अँग्रेज़ी से अनुवादः भरत त्रिपाठीः** पत्रकारिता की पढ़ाई। स्वतंत्र लेखन और द्विभाषिक अनुवाद करते हैं। होशंगाबाद में निवास।

लेख के इस भाग के लिए सन्दर्भ ग्रन्थ इस प्रकार है -

NCERT (2006a) *Economics: Textbook for Class 9*, NCERT, New Delhi.

NCERT (2006b) *Indian Economic Development : Textbook for Class 11*, NCERT, New Delhi.

NCERT (2006c) *Teaching of Social Sciences*, National Focus Group, NCERT, New Delhi.

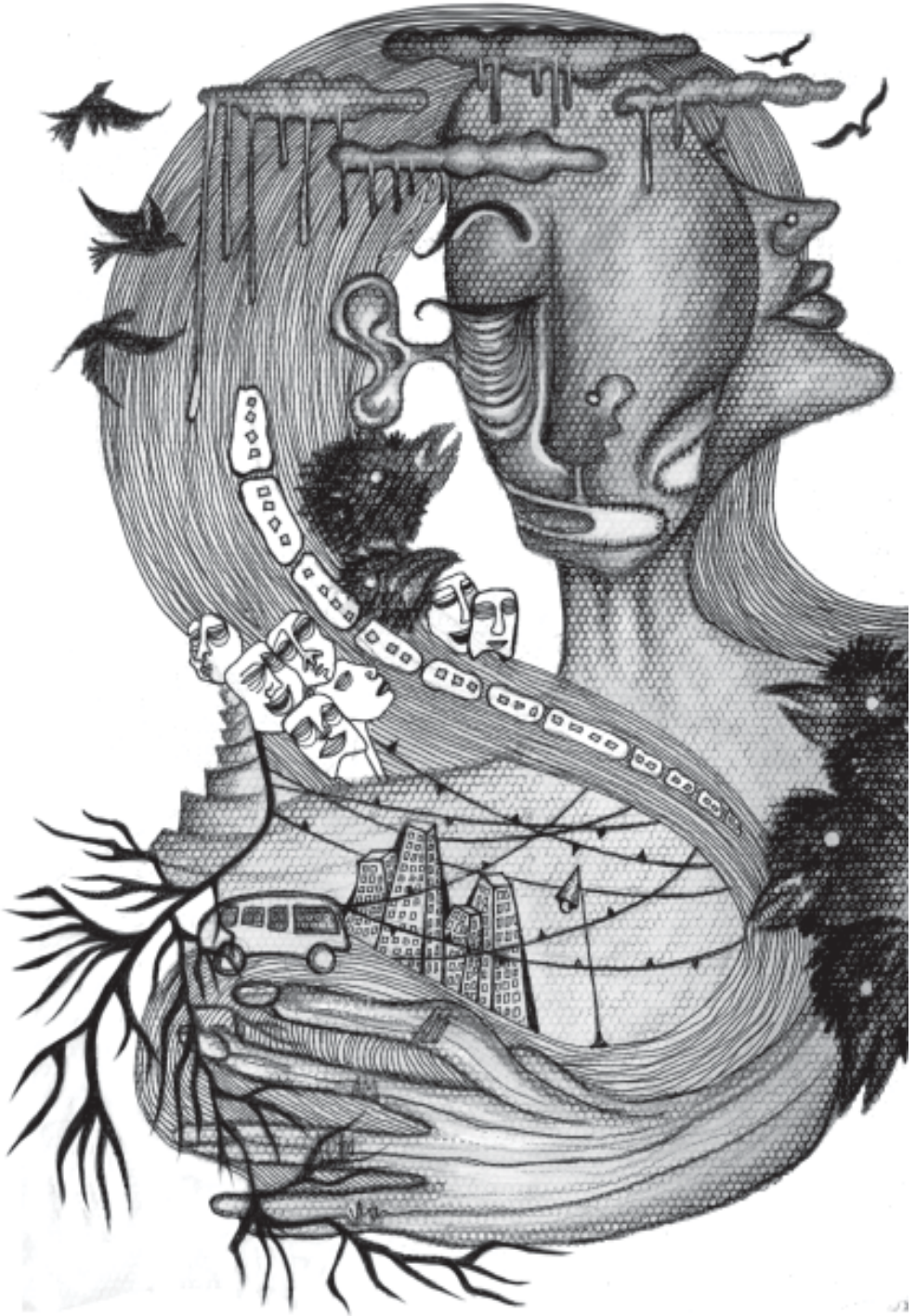

कहानी

डोमखाना के बगल में

विवेक मेहता

22 दिसम्बर, 1972

बनारस की एक कड़कड़ाती ठण्डी शाम और सड़क के किनारे खड़ी मैं घबराहट में पसीने से तर-बतर हो रही थी। कुछ देर पहले ही तो सिटी-बस में बैठी हुई थी और फिर यह कह कर उतार दी गई कि 'उसका आदमी छूट गया'। हाँ, यही कह रहे थे सभी उनके लिए कि आदमी छूट गया। उन्होंने कहा कि 'चढ़ जाओ' तो मैं बस में चढ़कर एक सीट पकड़कर बैठ गई। सोचा कि वो पीछे ही हैं। पहले तो कुछ समझ नहीं आया। पर जब कान के पास आकर कोई चिल्लाया कि 'तुम्हारा आदमी छूट गया' और वो मुझे दिखे नहीं तो मैं घबरा गई। अपनी टूटी-फूटी हिन्दी में किसी तरह मैंने कहा, "रुखाओ-रुखाओ" तो लोगों ने बस रुकवाकर मुझे नीचे उतार दिया।

वो 12वाँ दिन ही तो था मेरा बनारस में। 10 दिसम्बर को पहुँची थी बनारस - लखीमपुर, असम से, 5 दिन का अपना पहला रेल सफर करके। असम के एक छोटे-से गाँव धेखियाखुआ में पैदा हुई, वहीं पली-बढ़ी थी मैं। पर उतनी भी गँवार नहीं थी जितना बनारस में सभी मुझे समझते थे। बी.ए. पास थी। असमिया पढ़-लिख सकती थी, और-तो-और इंग्लिश भी समझती थी। गाती थी, भूपेन हज़ारिका के गाने। सहेलियाँ कहतीं कि भुनु कितनी सुरीली है। पर इस मुई हिन्दी ने तो गूंगा ही बना दिया।

"कहाँ जाएँगी? अरे बहिनजी कहाँ जाइएगा?"

मेरा ध्यान गया। एक रिक्शावाला खाली रिक्शा लिए मुझसे

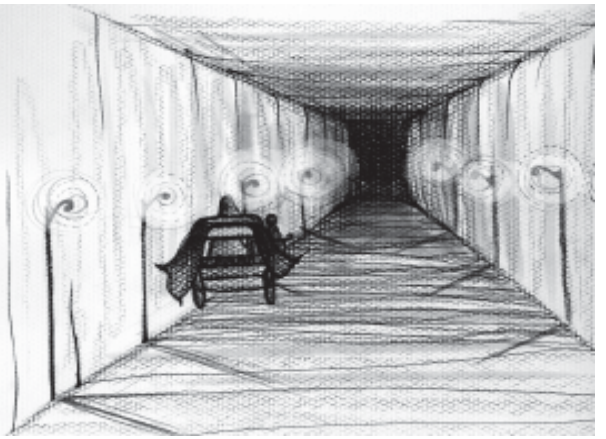

ही पूछ रहा था। कहाँ जाना है? क्या बोलूँ? क्या बताऊँ? मुझे तो जगह का नाम भी नहीं पता।

"अरे कहाँ जाएँगी? कुछ बोलिएगा?"

इस बार न जाने कैसे कण्ठ फूटा

और आवाज़ निकली, "डूमखाना का बोगल में।"

उन्हें कहते सुना था, पर मुझे तो मालूम ही नहीं थे इन शब्दों के मतलब जो मैंने कहे। पर रिक्शा वाला समझ गया। और चल दी मैं रिक्शे में बैठकर डोमखाना के बगल में।

लेडी कीन कॉलेज, शिलॉंग में पढ़ना चाहती थी मैं। सुना था मैंने कि बड़ा मॉडर्न कॉलेज था। लेकिन घर के बड़ों ने इजाज़त नहीं दी। वरना शादी होती मेरी किसी चाय-बागान के मैनेजर से। ठाठ से रहती, बड़ी गाड़ी में घूमती। इनके चक्कर में तो न पड़ती जो पता नहीं कहाँ छोड़ गए थे मुझे अकेले, इस अनजान शहर में।

वैसे मेरा बनारस आना ऐसे ही कई संजोगों का नतीजा था। ये पिछले 10 सालों से थे बनारस में, बैंक में क्लर्क। पर नौकरी तो बस एक बहाना थी। असली कारण था उनका संगीत-प्रेम। मन था तबला बजाना सीखें, और वो भी गुदई महाराज से। अखबार में जब बनारस में बैंक की नौकरी का इश्तेहार देखा तो अर्ज़ी लगाई। मेट्रिक पास थे, और संयोग देखिए कि मिल भी गई नौकरी। और एक तरह से मेरा भी आना तय हो गया इस शहर में।

कहने को बड़ा शहर, लाखों लोग पर मेरे लिए तो सब कुछ अनजाना। इन्हें भी तो मैं उतना ही जानती थी। एक भी चेहरा ऐसा नहीं सड़क पर जिसे मैं पहचानती हूँ। उस दिन मुझे समझ में आ रहा था कि क्या होता है भीड़ में अकेले होने का मतलब। याद आ रही थीं वो माँजी जो रोज़ सुबह इनके ऑफिस जाते समय इशारे से मुझे अपने पास बुलातीं। पर मैं बस हाथ हिलाकर वापिस घुस जाती घर में। बन्द कर लेती अपने आप को अन्दर ही, जब तक वो नहीं आ जाते।

सामने ही रहती थीं वो। उन दिनों ठण्ड के चलते बाहर आंगन में ही अंगीठी जलाए हाथ-पाँव सेकती रहती। कभी-कभी मन करता कि जाऊँ, पास बैठूँ उनके, पर झिझक में अन्दर ही रह जाती कि बात क्या करूँगी। सोच रही थी मैं कि आज वो ही दिख जाएँ कहीं रास्ते में। या मुनिया ही, जिसने पूरे मोहल्ले में फैलाया था कि गोस्वामीजी की मिसिज़ गूंगी हैं। मैं करती भी क्या, वो बर्तन मांजती और मुझे कोई बर्तन चाहिए होता तो मैं इशारे से ही मांगती कि ये दे दो या वो दे दो। उन बर्तनों के हिन्दी-बनारसी नाम मेरी ज़ुबान पर चढ़े नहीं थे।

पर इनकी हिन्दी तो बहुत अच्छी थी। देहाती भी बोल लेते थे। शायद लम्बे समय से बनारस में रहने का नतीजा था। शादी से पहले गुदई महाराज के साथ कई जगहों पर घूम भी आए थे। और फिर बैंक की नौकरी जिसमें अलग-अलग तरह के लोगों से बातचीत करनी पड़ती है। बांग्ला तो इतनी सुन्दर बोलते कि सभी इन्हें बंगाली ही समझते। वैसे भी उत्तर भारत के लोगों का भूगोल पूर्व में बंगाल तक ही सीमित है। पूर्व से आने वाले सभी बंगाली और थोड़े अलग दिखे तो चीनी।

"लो बहिन जी, आ गया डोमखाना। अब कहाँ?"

"ऊँहा।"

मैंने इशारे से गली की तरफ दिखाते हुए कहा। सिर्फ 11 दिन पुराना सही पर दूर से ही अपना घर देख कुछ शान्ति मिली मन को। उस किराये के मकान को देखकर लगा कि हाँ, मेरा भी कुछ ठौर-ठिकाना है।

"चार आना बहिन जी।"

मैं चुप।

"अरे बहिन जी चार आना! अँधेरा हो चला है, लाइए, हम भी जाएँ अपने घर।"

मैं सोच रही थी कि उसे तो इनाम मिलना चाहिए, मुझ अनजान को घर तक पहुँचाने के लिए, पर मेरे पास तो भाड़े भर के भी पैसे नहीं।

"का हुआ, पैसा नहीं है का? अरे तो पहले बताना था। इतना भारी-भरकम साड़ी और कोट पहनी हैं और

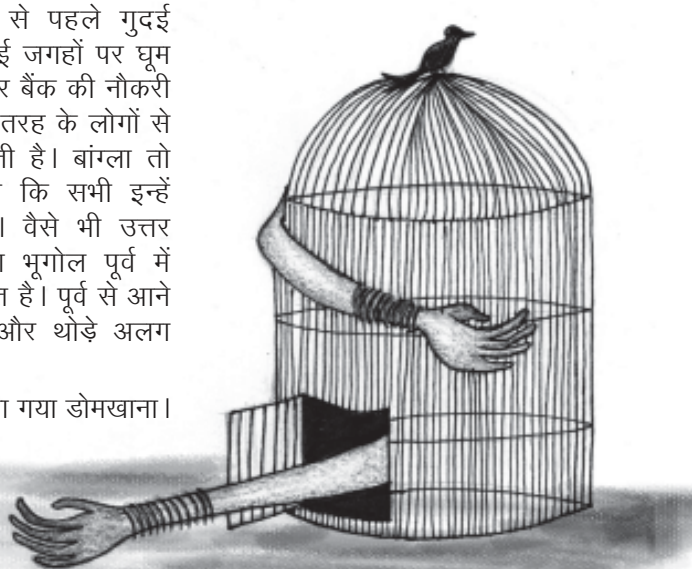

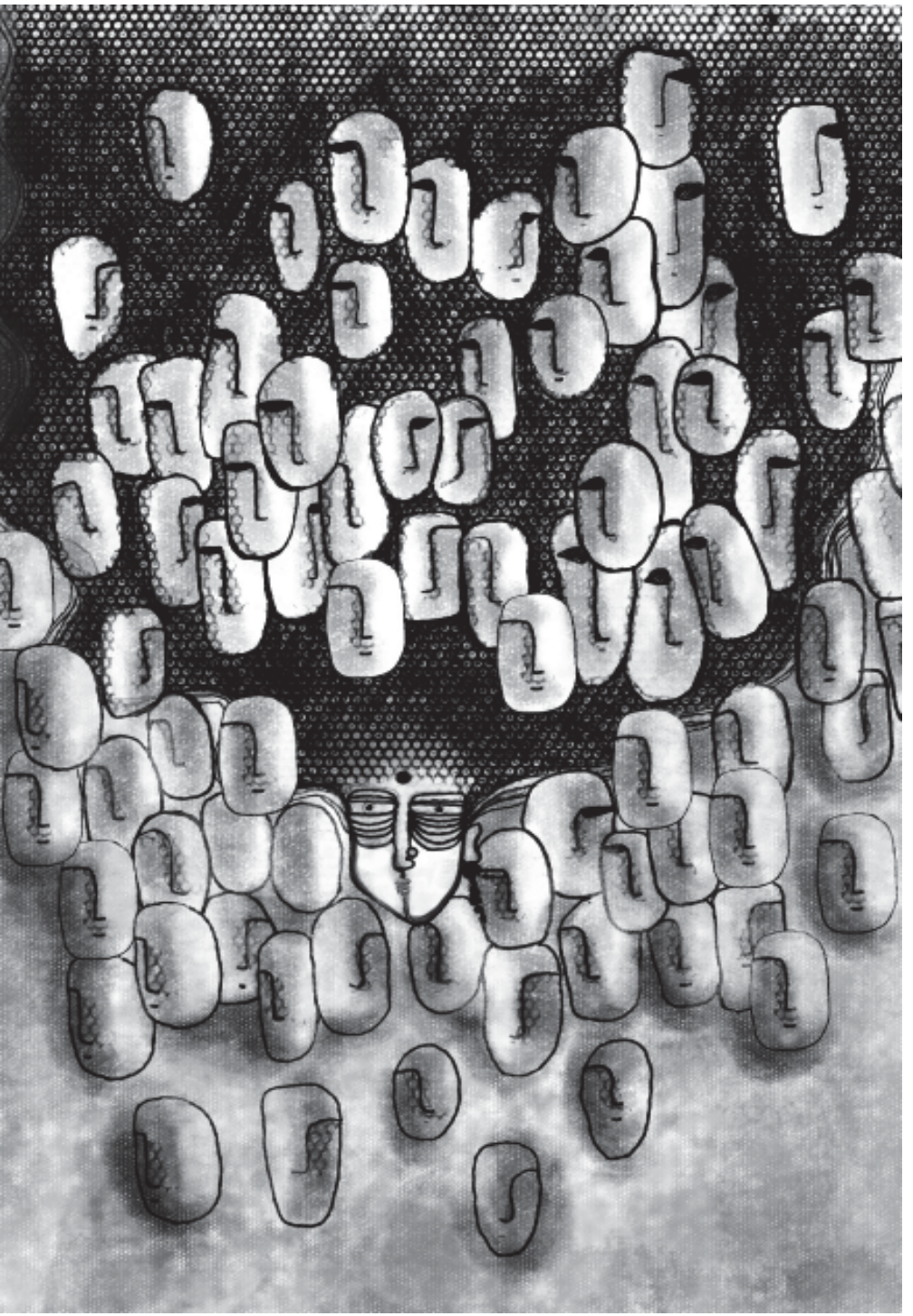

पास चार आने नहीं।"

मेरे तो बस आँसू झलकने को थे।

"का हुआ बेटी? अकेले आ रही हो? गोस्वामीजी कहाँ रह गए? और तुम परेशान काहे को हो?"

माँजी ने रिक्शावाले की बातें सुन ली थीं। अपनी धोती की गाँठ खोलकर पैसे दिए उसे और मुझे वहीं आँगन में ही अपने साथ बैठा लिया। बगल के पण्डित जी भी आ गए और फिर सवालों की झड़ी जिनके जवाब मैं चाहकर भी नहीं दे पा रही थी।

"कहाँ चले गए गोस्वामीजी? ऐसे तो भले मानुष लगते हैं। लगता है दहेज के चक्कर में गूंगी लड़की से शादी किए और अब छोड़ गए हैं अकेले।"

तभी ये आते हुए दिखे। अब सारी सवालिया नज़रें उन्हीं पर थीं। लेकिन वो सवाल और टिप्पणियाँ नहीं हुईं। आते-आते ही सारी घटना माँजी और पण्डितजी को बताई। और फिर से बन गए भले मानुष।

"थैंक गॉड! तुम मिल गईं। कैसे पहुँची यहाँ?"

"आ ही गई किसी तरह, डोमखाना के बगल में।"

आज इतना अनजाना नहीं है ये शहर। कितनी यादें जुड़ी हैं इस शहर से। और अब मेरी हिन्दी भी उतनी बुरी नहीं।

इन दिनों खुद से ही पूछती हूँ कभी उनका वो सवाल कि कैसे पहुँची यहाँ तक?

और जवाब मिलता है अन्तर्मन से कि 'आ ही गई किसी तरह, डोमखाना के बगल से यहाँ तक'।

विवेक मेहता: आई.आई.टी., कानपुर से मेकेनिकल इंजीनियरिंग में पीएच.डी. की है। इन दिनों स्वतंत्र रूप से लिखने व अनुवाद का काम करते हैं।

यह कहानी जाह्नवी गोस्वामी के साथ हुई घटना पर आधारित है। लेखक ने उनकी असमिया डायरी व उनके साथ हुई बातचीत के आधार पर उस घटना का हिन्दी रूपान्तरण किया है।

सभी चित्र: विदुषी यादव: आई.डी.सी., आई.आई.टी. बॉम्बे से एनीमेशन में स्नातकोत्तर। स्वतंत्र रूप से एनीमेशन फिल्में बनाती हैं और चित्रकारी करती हैं।

सवालीराम

सवाल: चन्द्रमा छोटा और बड़ा क्यों होता है?

जवाब: सच तो यह है कि चन्द्रमा कभी छोटा और बड़ा नहीं होता बल्कि यह हमें छोटा और बड़ा होता दिखाई देता है। हमारे सौर मण्डल में मौजूद ग्रह एवं अन्य पिण्ड सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। हमारी पृथ्वी जो एक ग्रह है सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने में लगभग 365 दिन का समय लेती है। हमारी पृथ्वी का एक चन्द्रमा (उपग्रह) है, जो पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाता है। चन्द्रमा पृथ्वी का एक चक्कर लगभग 30 दिन में पूरा करता है।

हमें चन्द्रमा कभी पूरा तो कभी आधा तो कभी अर्धचन्द्राकार आकृति के रूप में नज़र आता है। पूरे चाँद को हम पूर्णिमा कहते हैं और जब चाँद दिखाई नहीं देता तो इसे अमावस्या कहते हैं। क्या आप जानते हैं कि अमावस्या के दिन चाँद आसमान में होता है या नहीं? यदि होता है तो कहाँ पर हो सकता है? आप इसके बारे में सोचकर देखिए। अभी हम चाँद के छोटे और बड़े होते दिखाई देने पर बात करते हैं।

चाँद का खुद का कोई प्रकाश नहीं है, यह सूर्य के प्रकाश से रोशन होता है। चाँद एक गोल गेंद की तरह है इसलिए इसका आधा हिस्सा रोशन

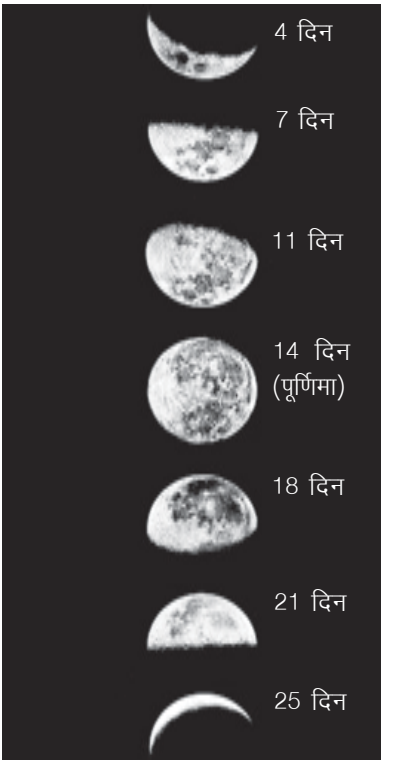

अमावस्या के चार दिन बाद से आसमान में चाँद की स्थिति

रहता है और आधा हिस्सा अँधियारा। चाँद का सूर्य की तरफ वाला हिस्सा सूर्य प्रकाश को परावर्तित करते रहने से हमेशा चमकदार दिखाई देता है। लेकिन पूरे चमकदार हिस्से को पृथ्वी से हमेशा देख पाना सम्भव नहीं है। धरती का चक्कर लगाते हुए परिक्रमा कक्ष में चाँद की स्थिति (लोकेशन) में बदलाव होते हैं। उन बदलावों के अनुरूप ही प्रकाश परावर्तित करने वाली सतह को हम धरती से देख पाते हैं। चाँद की चमकदार सतह को हम क्रमिक रूप से बढ़ते या घटते हुए देखते हैं। जैसे अमावस्या के बाद हर दिन चाँद की चमकदार सतह का आकार बढ़ता जाता है और पूर्णिमा के दिन पूरी चमकदार सतह को देख पाते हैं। इसी तरह पूर्णिमा के बाद चमकदार सतह के दिखाई देने वाले हिस्से का आकार घटने लगता है। और अमावस्या के

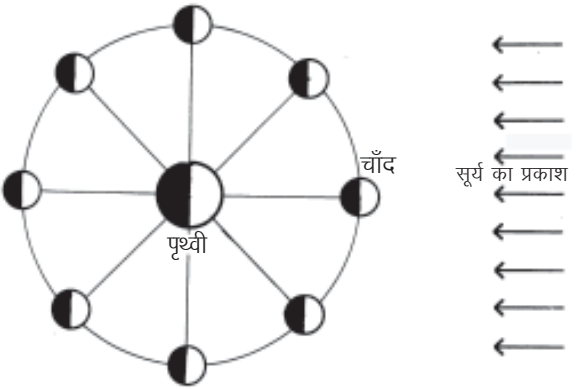

चाँद की कलाएँ: चाँद के जिस हिस्से पर सूर्य का प्रकाश पहुँचता है उसे सफेद रंग में दिखाया गया है और चाँद के जिस हिस्से तक सूर्य की किरणें नहीं पहुँचतीं यानी अँधेरा होता है उसे काले रंग में दिखाया गया है।

दिन चाँद का वो हिस्सा हमारे सामने होता है जिस पर सूर्य का प्रकाश नहीं पड़ रहा है। आप ही सोचिए, जब चाँद की सतह से परावर्तित किरणें हम तक पहुँच ही नहीं रही हैं तो चाँद दिखेगा कैसे?

चाँद की इन कलाओं के बारे में एक रोचक बात यह है कि यदि पृथ्वी की भूमध्य रेखा से उत्तर या दक्षिण ध्रुव की दिशा में चलें तो चाँद की चमकदार सतह को देखने का कोण बदलता जाता है। फलस्वरूप कई दफा दूज का चाँद भूमध्यरेखा के आसपास के इलाकों में लेटी नाव की तरह दिखता है तो वही दूज का चाँद 20 से 60 डिग्री उत्तरी और दक्षिणी अक्षांश पर कुछ कोण बनाता हुआ या खड़ी नाव या चेहरे की तरह दिखाई देता है। आप इंटरनेट का उपयोग करते हुए इसे देख सकते हैं। ऐसा क्यों होता है, इस बारे में यह माना जाता है कि पृथ्वी का भूमध्यरेखीय तल (वह तल जिस पर पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है) अपनी घूर्णन कक्षा के सापेक्ष 23.5 डिग्री झुका हुआ है। चाँद की कक्षा भी भूमध्यरेखीय तल पर 5 डिग्री का कोण बनाती है। इस सबका मिला-जुला प्रभाव यह पड़ता है कि पृथ्वी की अलग-अलग जगहों से चाँद की चमकदार सतह को देखने का कोण बदलता जाता है।

कलाओं की बात करते हुए यह भी बताते चलें कि हम सौर मण्डल में सभी ग्रहों के सूर्य से प्रकाशित हिस्सों को देखते हैं। लेकिन शुक्र ग्रह और बुध ग्रह की बात कुछ निराली है। इन दोनों ग्रहों की दिलकश कलाओं को दूरबीन की मदद से देखा जा सकता है।

शिक्षक साथी चन्द्रमा की कलाओं सम्बन्धी गतिविधि को कक्षा में करवाने के लिए होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के तहत विकसित पाठ्य पुस्तक 'बाल वैज्ञानिक' कक्षा-8 के अध्याय 'आकाश की ओर' की मदद ले सकते हैं। पाठ्य पुस्तक एकलव्य की वेबसाइट (www.eklavya.in) पर उपलब्ध है।

इस जवाब को अफसाना पठान ने तैयार किया है।
अफसाना पठानः 'स्रोत' पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

इस बार का सवाल

सवालः कौन-सी धातु चाकू से काटी जा सकती है?

इस सवाल के बारे में आप क्या सोचते हैं, आपका क्या अनुमान है, क्या होता होगा? इस सवाल को लेकर आप जो कुछ भी सोचते हैं, सही-गलत की परवाह किए बिना हमारे पास लिखकर भेज दीजिए।

RNI No. : MPHIN/2007/20203

प्रकाशक, मुद्रक, अरविन्द सरदाना की ओर से निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन ई-10, शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल-462 016 द्वारा
एकलव्य से प्रकाशित तथा भण्डारी ऑफसेट प्रिंटर्स, ई-3/12, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462016 (म.प्र.)
से मुद्रित, सम्पादकः राजेश खिंदरी।